इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK-005
वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता

भाग 1

वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

कार्यक्रम संयोजक

प्रो. सत्यकाम,
प्रोफेसर, हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ0 नीतू शर्मा असि. प्रो., केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्रीरणवीर परिसर, कोटभलवाल, जम्मू।	1, 2
डॉ. नीरज तिवारी असि. प्रो., केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, लखनऊ परिसर, लखनऊ।	3, 4
डॉ. संकल्प मिश्र असि. प्रो., पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन।	5, 6
डॉ. पवन व्यास असि. प्रो., केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर, जयपुर।	7, 8
डॉ. श्रीवत्स शास्त्री एसो. प्रो., मोतीलाल नेहरू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	9
प्रो. राजेन्द्र मिश्र (सेवानिवृत्त प्रो.), 09 भूरा पटेल नगर–बी, डीसीएम, अजमेर रोड, जयपुर	10, 11, 12, 13
डॉ. रामबाबू पाण्डेय राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	14, 15
डॉ. पंकज पुरोहित असि. प्रो., केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर, जयपुर।	16, 17

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. सत्यकाम
डॉ. अर्पिता त्रिपाठी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम सम्पादक

डॉ. अर्पिता त्रिपाठी
परामर्शदाता संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुल सचिव (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि. प्र. इग्नू, नई दिल्ली

दिसम्बर, 2020

ISBN-

मानविकी विद्यापीठ एवं इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के बारे में विश्वविद्यालय कार्यालय मैदान गढ़ी नई दिल्ली से अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक :

पाठ्यक्रम परिचय

एम.ए. (संस्कृत) के विद्यार्थी के रूप में अब आप MSK-005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको वैदिक वाङ्मय और भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता से परिचित कराना है जिसके आधार पर आप वैदिक वाङ्मय और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को समझने की क्षमता का विकास कर सकें। इस पाठ्यक्रम में अध्ययन के लिए 29 इकाइयाँ हैं। यह पाठ्यक्रम 8 क्रेडिट का है।

वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय सभ्यता और संस्कृति का यह पाठ्यक्रम 7 खण्डों में विभाजित है। इस पाठ्यक्रम का प्रथम खण्ड वैदिक साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहितायें, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वैदिककालीन जीवन, यज्ञ मीमांसा आदि विषयों का आप अध्ययन करेंगे। पाठ्यक्रम का द्वितीय खण्ड वेदाङ्गों से सम्बन्धित है। इस खण्ड में आप कल्पसूत्रों का अध्ययन करेंगे। कल्पसूत्रों के अन्तर्गत श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र परिगणित हैं। चारों वेदों के अपने-अपने कल्पसूत्र हैं जिनका अध्ययन आप इस खण्ड में करेंगे।

पाठ्यक्रम का तृतीय खण्ड वैदिक सूक्त से सम्बन्धित है। वेदों में देवताओं की स्तुतियों में अनेक मन्त्र हैं। इस खण्ड में आप अग्नि, इन्द्र, शिवसंकल्प, वाक्, अभय आदि सूक्तों के मन्त्रों का अध्ययन करेंगे तथा वैदिक देवताओं अग्नि, इन्द्र, वाक्, नासदीय आदि की विशेषताओं, उनके स्वरूप एवं उनके कार्यों का अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का चतुर्थ खण्ड निरुक्त से सम्बन्धित है। यास्क ने निरुक्त की रचना की है। इस खण्ड में आप पदों के चतुर्विध विभाग, नाम-आख्यात, निरुक्त-प्रयोजन, निर्वचन, निपात के विषय में अध्ययन करेंगे। इस खण्ड में आप गो, आचार्य, अग्नि, समुद्र आदि पदों के निर्वचन को भी जानेंगे।

पाठ्यक्रम का पंचम खण्ड वैदिक व्याकरण से सम्बद्ध है। इस खण्ड में आप वैदिक सन्धि एवं तुमर्थक तथा त्वार्थक प्रत्ययों का अध्ययन करेंगे। वैदिक सन्धि के अन्तर्गत अच्, हल् एवं विसर्ग सन्धि, से, सेन, असे, असेन् आदि तुमर्थक प्रत्ययों तथा इमनिच्, ष्यञ्, यत् आदि त्वाार्थक प्रत्ययों का अध्ययन करेंगे।

पाठ्यक्रम का छठाँ एवं सप्तम खण्ड भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से सम्बद्ध है। इस खण्ड में संस्कृति एवं सभ्यता, पुराणकालीन, रामायणकालीन एवं महाभारतकालीन संस्कृति एवं सभ्यता का अध्ययन करेंगे। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली एवं प्राचीन भारत में नारी की स्थिति का अध्ययन भी आप इस खण्ड में करेंगे। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ चतुष्टय तथा संस्कार का भी विस्तृत वर्णन खण्ड में किया गया है। इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् आपमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को समझने की क्षमता का विकास होगा।

आशा है कि MSK-005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' का यह पाठ्यक्रम वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय सभ्यता और संस्कृति को समझने में सहायक होगा। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की पाठ्य सामग्री निम्न ढंग से प्रस्तुत की गई है –

1.	वैदिक साहित्य का इतिहास	6 इकाइयाँ
2.	वेदाङ्ग	3 इकाइयाँ
3.	वैदिक सूक्त	4 इकाइयाँ

4.	निरुक्त	4 इकाइयाँ
5.	वैदिक व्याकरण	2 इकाइयाँ
6.	भारतीय संस्कृति और सभ्यता – भाग 1	6 इकाइयाँ
7.	भारतीय संस्कृति और सभ्यता – भाग 2	4 इकाइयाँ
	कुल	29 इकाइयाँ

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MSK-005
वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता

खंड

1

वैदिक साहित्य का इतिहास

खण्ड 1

MSK-005 'वैदिक वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति और सभ्यता' पाठ्यक्रम का यह प्रथम खण्ड है। विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय वेद है। इस खण्ड के माध्यम से आप वैदिक साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित विभिन्न विषयों यथा ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि का अध्ययन करेंगे। 'वैदिक साहित्य का इतिहास' नामक इस खण्ड में छः इकाइयाँ हैं। इस खण्ड की पहली इकाई वैदिक संहिता से सम्बन्धित है। इस इकाई में वेदों के स्वरूप, वेदों की अपौरुषेयता, उनका काल निर्धारण तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद संहिता से सम्बन्धित विषय-वस्तु, उनकी शाखायें आदि का प्रतिपादन किया गया है।

इस खण्ड की दूसरी इकाई ब्राह्मण से सम्बन्धित है। प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, यथा ऋग्वेद के ऐतेरय और शांखायन, यजुर्वेद के शतपथ, तैत्तिरीय, सामवेद के ताड्य, षड्विंश, सामविधान आदि अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। इस इकाई में इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय का वर्णन किया गया है।

इस खण्ड की तीसरी इकाई आरण्यक से सम्बन्धित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के समान ही प्रत्येक वेद के आरण्यक ग्रन्थ है, यथा – ऋग्वेद के ऐतरेय और शांखयन, यजुर्वेद के तैत्तिरीय, मैत्रायणी, बृहदारण्यक, सामवेद के छान्दोग्य, तवलकार आरण्यक, अथर्ववेद का गोपथ आरण्यक है। इस इकाई में आप आरण्यकों के महत्त्व, उनके रचयिता तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की चौथी इकाई उपनिषदों से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप उपनिषदों के महत्त्व, उनके रचयिता, प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन करेंगे। इस खण्ड की पाँचवी इकाई वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध है। इस इकाई में आप नदियों, पर्वतों, वनों, विवाह परम्परा, भूषण सज्जा, आवागमन के साधन, कृषि, पशुपालन, उद्योग आदि के विषय में अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की छठीं इकाई वैदिक यज्ञ मीमांसा से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयाग से सम्बन्धित विभिन्न यज्ञों के विषयों का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है जिनका अर्थ जानना आपके लिए नितान्त अपेक्षित है, इन शब्दों का अर्थ जानकर आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गयी है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ।

इकाई 1 वैदिक संहितायें– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- 'वेद' के स्वरूप को समझने में समर्थ होंगे।
- वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता) का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- चतुर्विध संहिताओं की उपलब्ध शाखाओं से परिचित हो सकेंगे।
- चतुर्विध संहिताओं के भाष्यकारों का भी परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व वाङ्मय में 'संस्कृत वाङ्मय' तथा 'संस्कृत वाङ्मय' में 'वैदिक वाङ्मय' का महत्त्व सर्वातिशायी है। 'वाक्' को ही सम्पूर्ण सृष्टि कहा जाता है। उसमें जो संस्कृत वाक् है वही प्रशस्य है–'**संस्कृतं नाम दैवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः।**' संस्कृत वाक् के दो प्रकार हैं– वैदिक तथा लौकिक। इनमें से महर्षि वाल्मीकि से अद्यावधि व्याप्त समग्र (लौकिक) वाग्वितान् का मूल वैदिक वाक् ही है जैसा कि महर्षि वेदव्यास ने कहा है–

अनादिनिधना नित्या वागुत्स्रष्टा स्वयंभुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।।

भारतीय परम्परानुसार वैदिक वाक् (वेद) ही लोक, भारतीय आर्य संस्कृति और धर्म का मूल है क्योंकि इसमें ही इहलोक तथा परलोक का समग्रज्ञान भण्डार निहित है। मानव धर्म के विवेक का यही सनातन चक्षु है–**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, सर्वज्ञानमयो हि सः।।** (मनु. 2/7)

वैदिक वाक् (वाङ्मय) के अन्तर्गत वेद तथा वेदों से सम्बद्ध बहुविध शाब्दिकाभिव्यक्ति रूप ज्ञानराशि समाहित है। जिसके मूलतः चार सोपान हैं– 1. वेद (मन्त्र/संहिता) 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक, 4. उपनिषद्। इनके अतिरिक्त सूत्रग्रन्थ तथा षड् वेदाङ्ग भी वैदिक वाङ्मय में परिगणित होते हैं किन्तु ब्राह्मणों से वेदाङ्ग तक समग्र ग्रन्थराशि मूलतः वेदों के ही गहनार्थ को प्रकाशित करती है। अतः वैदिक वाङ्मय का मूल स्तम्भ वेद अर्थात् वैदिक संहितायें ही हैं। प्रस्तुत इकाई में आप वैदिक वाङ्मय के आधारस्तम्भ इन्हीं वेदों का परिचय प्राप्त करेंगे।

1.2 वैदिक पृष्ठभूमि

विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय 'वेद' नाम से जाना जाता है। मानव सभ्यता के आरम्भ में वेदमन्त्रों का प्रथम दर्शन करने वाले साक्षात्कृत्धर्मा तपःपूत वैदिक ऋषियों ने ब्रह्माण्ड में व्याप्त विविध तत्त्वों के अन्तस् में निगूहित जिस ईश्वरीय ज्ञान का साक्षात्कार करके उसे मन्त्रों के रूप में अभिव्यक्त किया वे (मन्त्र) ही ज्ञानराशिसम्पन्न होने से 'वेद' कहलाये।

क) **'वेद' शब्द का अर्थ** – प्राचीनतम वाङ्मय के लिये वेद शब्द का अभिधान अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आ रहा है। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है– 'पवित्रज्ञान'। 'विद्' धातु चार अर्थों में प्रयुक्त होती है– ज्ञान, लाभ, सत्ता और विचारणा। भारतीय परम्परा में विद् धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द प्रधानतः ज्ञान का वाचक है किन्तु आचार्यों ने 'वेद' शब्द के निर्वचन में उक्त चारों अर्थों को समाहित करने का प्रयास किया है। आचार्य विष्णुमित्र के अनुसार, ''**विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मार्थपुरुषार्थ इति वेदाः।**'' (ऋक्प्रातिशाख्य-वर्गद्वयवृत्ति) अर्थात् धर्मार्थकाममोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थों का ज्ञान या प्राप्ति जिसके द्वारा होती है, वह 'वेद' है।

महर्षि दयानन्द ने भी लिखा है–विदन्ति = जानन्ति, विद्यन्ते = भवन्ति, विन्दन्ति अथवा विन्दन्ते = लभ्यन्ते, विन्दन्ते = विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्याः यैः येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः। (सत्यार्थप्रकाश)

सायण ने 'वेद' को इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार का अलौकिक उपाय बताया है–''**इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः।**'' (ऋ.वे.भा. भू.) उनके अनुसार– वेदों का वेदत्व इसी में है कि प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणों से भी जिन अलौकिक विषयों (स्वर्ग परलोक ब्रह्म धर्मादि) का ज्ञान नहीं हो पाता। उन अलौकिक विषयों का ज्ञान कराने में समर्थ एकमात्र प्रमाण 'वेद' ही है।

'वेद' में स्वरों का अत्यन्त महत्त्व है। स्वर परिवर्तन होने से अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है। अतः स्वर की दृष्टि से ज्ञानार्थक वेद शब्द आद्युदात्त है जबकि अन्त्योदात्तवेद शब्द कुशमुष्टि का पर्याय है। 'वेद' को गुरुशिष्य परम्परा में

श्रुतिपरम्परा से अध्ययन किये जाने के कारण 'श्रुति', गुरुमुख से यथाश्रुत अभ्यास किये जाने से 'आम्नाय', ऋक्, यजुष्, सामन् त्रिस्वरूपात्मक होने से 'त्रयी', मन्त्रात्मक होने से 'छन्दस्', सभी द्विजों के लिये अध्ययन का एकमात्र विषय होने से 'स्वाध्याय' तथा धर्म का मूल होने से इसे 'आगम' भी कहते हैं।

ख) **वेद का स्वरूप** – वैदिक वाङ्मय में 'वेद' के स्वरूप के विषय में दो मान्यतायें प्रचलित हैं–

1. बोधायन तथा आपस्तम्ब के इन वचनों '**मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्यचक्षते**' (बो. गृ. सू. 2-6-2) तथा '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' (आप.यज्ञपरिभाषा 1-3-3-1) के अनुसार वेद मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशि हैं अर्थात् इन दोनों (मन्त्र तथा ब्राह्मण) की संयुक्तसंज्ञा ही 'वेद' है। वेदभाष्यकारों का भी प्रायः यही मत है। यहाँ 'मन्त्र' पद से संहिता भाग तथा 'ब्राह्मण' पद से ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् संग्रहीत होते हैं।

2. दूसरी विचारधारा के अनुसार वेद मन्त्रात्मक संहिता है अर्थात् संहिता को ही वेद कहते हैं।

परम्परा में 'वेद' शब्द मन्त्र, संहिता तथा ब्राह्मण तीनों के लिये ही प्रयुक्त दृष्टिगत होता है –

1. **मन्त्रों का वेदत्व** –'**मननात् मन्त्रः**' (निरुक्त) जिसके द्वारा यज्ञयागों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है तथा उनमें वर्णित देवताओं का स्तुति विधान किया जाता है, उन्हें मन्त्र कहते हैं। 'मन्त्र' शब्द 'मन्' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है– गुप्त कथन या शब्दात्मक अभिव्यक्ति। शब्दसमूहरूप मन्त्रों की अभिव्यक्ति के तीन प्रकार हैं– पद्यात्मक, गद्यात्मक तथा गानात्मक। इन्हें ही वैदिक शब्दावली में ऋक्, यजुष् तथा सामन् कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ में वेद का स्वरूप त्रिविध मन्त्रात्मक था, जिसे त्रयी (वेदत्रयी) कहा गया। उव्वट का भी कथन है–'**सर्वकालं सर्वदेशेषु प्रतिचरणमविभागेनैको मन्त्रराशिर्वेद उच्यते।**' (हि. ए. सं. लि. पृ. 121)

2. **संहिताओ का वेदत्व** – वैदिकमन्त्रों के समूह या सङ्कलन का नाम 'संहिता' है। ये संहितायें चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। चूंकि इन संहिताओं में पद्य, गद्य तथा गानात्मक मन्त्र थे, अतः त्रिविध मन्त्रों के लिये प्रयुक्त 'वेद' शब्द इन चारों संहिताओं का भी वाचक बना।

3. **ब्राह्मणों का वेदत्व** – सभी सूत्रग्रन्थों तथा परवर्ती भाष्यकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों का भी वेदत्व स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि वैदिक साहित्य में यज्ञ सर्वोपरि है। मन्त्र और ब्राह्मण दोनों यज्ञविधा से सम्बद्ध हैं। मन्त्र तो कर्मानुष्ठान के स्मारक रूप में प्रयुक्त होते थे। अतः उनका वेदत्व तो सिद्ध था ही, साथ में ब्राह्मणों में जिस विधि तथा अर्थवाद का विवेचन हुआ, वह भी यज्ञविधा का एक मुख्यरूप था इसलिये यज्ञविद्या के दो भाग हुए– मन्त्र तथा विधि। ये विधियाँ ब्राह्मणों में ही थीं, मन्त्रों में नहीं। अतः दोनों (मन्त्र तथा ब्राह्मण) की संयुक्त संज्ञा प्रचलित हुई– वेद।

वस्तुतः ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ग्रन्थ वैदिक मन्त्र संहिताओं की ही कर्मकाण्डीय तथा ज्ञानकाण्डीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अतः 'वेद' शब्द प्रधानतः वैदिक मन्त्रों के लिये ही प्रयुक्त होता है जैसा कि सायण का भी वचन है–

"यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानस्वरूपत्वात् मन्त्र एवादौ समाम्नातः" (तै.सं.भा.भू)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मन्त्र संहिताओं के वेदत्व के सम्बन्ध में तर्क दिया है कि केवल संहिता भाग ही वेद है क्योंकि वह ऋषिदृष्ट है, ब्राह्मण ऋषिदृष्ट नहीं वे तो संहिताओं के भाष्यमात्र हैं। भाष्य या व्याख्या ग्रन्थ को वेद नहीं माना जा सकता (ऋ. वे.भा.भू. वेदसंज्ञाविचार) इस प्रकार मन्त्र संहिता ही मूलतः 'वेद' है।

1.3 वेदों का कालनिर्धारण

यद्यपि वेदों की अपौरुषेयता ही कालनिर्धारण की सम्भावना का निराकरण कर देती है, तथापि कुछ विद्वान् **नमः ऋषिभ्यो मन्त्रकृतो मनीषिणः** (तै.ब्रा. 4-1-1),**यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः** (तै.ब्रा. 2-7-7) इत्यादि वक्तव्यों के आधार पर ऋषियों को मन्त्रसृष्टा मानते हुये वेदों का कालनिर्धारण करते हैं। इस विषय में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है।

क) **भारतीय विद्वानों का मत** – भारतीय विद्वानों ने वेद तथा ब्राह्मणों में प्राप्त ऋतु तथा नक्षत्र निर्देशों के आधार पर ज्योतिषीय गणना करके वेदों के कालनिर्धारण का प्रयास किया है। इनमें प्रमुख आचार्यों के मत द्रष्टव्य हैं –

1) **बालगंगाधर तिलक** – बालगंगाधर तिलक ने बसन्तसम्पात को आधार मानते हुए वेदों का रचनाकाल 6000 ई.पू. से 4000 ई.पू. माना है। वेदों के कालनिर्धारण हेतु उन्होंने वैदिक काल को चार भागों में विभक्त किया है –

1. अदिति काल – (6000ई.पू. से 4000 ई.पू.) निविद् मन्त्रों की रचना इस काल में हुई।
2. मृगशिरा काल – (4000 ई.पू. से 2500 ई.पू) ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र इसी काल में रचे गये।
3. कृत्तिका काल – (2500 ई.पू. से 1400 ई.पू.) चारों संहिताओं का संकलन, कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों तथा वेदांग ज्योतिष का प्रणयन इसी युग में किया गया।
4. अन्तिम काल – (1400 ई.पू से 500 ई.पू.) गृह्यसूत्रों तथा दर्शनसूत्रों की रचना इसी युग में हुई।

तिलक के अनुसार ऋतुओं का आगमन सूर्यसंक्रान्ति पर आश्रित है। ऋतुयें निरन्तर पीछे हट रही हैं जो पहले वर्ष का आरम्भ बसन्त से होता था तथा बसन्तसम्पात क्रमशः उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा आदि नक्षत्रों से होता था अब उसका आरम्भ मीनराशि की संक्रान्ति तथा पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र के चतुर्थ चरण से होता है। सूर्य का संक्रमणवृत्त 360 डिग्री का है। अतः 27 नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र को एक डिग्री पीछे हटने में 72 वर्षों का समय तथा 13 डिग्री पीछे हटने में 72×13 = 972 वर्ष लगते हैं। अतः 1500 वर्ष पूर्व कृत्तिका में वसन्तसम्पात हुआ होगा। तिलक का कहना है कि ऋग्वेद में कुछ ऐसे मन्त्र हैं जिनसे मृगशिरा में वसन्तसम्पात का संकेत मिलता है जो कि पुनर्वसु नक्षत्र तक जाता है। मृगशिरा में बसन्तसम्पात का समय कृत्तिका वाले समय से 972×2 = 1944 वर्ष पूर्व होगा। फलतः मृगशिरा में बसन्तसम्पात होने का समय 4444 ई.पू. है। इसका निष्कर्ष है कि वेदों की रचना लगभग 4500 ई.पू. अर्थात् आज से लगभग 6500 ई.पू. हुई होगी।

2) **शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत** – आचार्य बालकृष्णदीक्षित ने शतपथब्राह्मण (2-12) में कृत्तिकानक्षत्र के पूर्वीय बिन्दु से उदय के आधार पर वेदों का रचनाकाल 3500 ई.पू. माना है। उनके अनुसार शतपथब्राह्मण की रचना के समय कृत्तिकाओं का उदय ठीक पूर्वीय बिन्दु पर होता था तथा कृत्तिका नक्षत्र अपने स्थान से 4-3/4 नक्षत्र पीछे हट चुका था अतः कृत्तिका नक्षत्र में बसन्तसम्पात सम्भवतः 2500 ई.पू. निर्धारित होता है।

3) **अविनाश चन्द्र दास** – डॉ. अविनाशचन्द्रदास ने भूगर्भशास्त्र तथा भौगोलिक साक्ष्यों के आधार पर ऋग्वेद का रचनाकाल ईसा से 25000 वर्ष पूर्व माना है।

ख) **पाश्चात्य विद्वानों का मत** – वेदों के काल निर्धारण के सम्बन्ध में पश्चात्याचार्यों में मैक्समूलर, याकोबी, विन्टरनित्स तथा मैक्डोनल के मत उल्लेखनीय है–

1) **मैक्समूलर**– जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने History of Ancient Sanskrit literature में वेदों के कालनिर्धारण करने का सर्वप्रथम प्रयास किया। उन्होंने महात्मा बुद्ध के आविर्भाव को आधार मानकर वैदिक संहिता तथा उनके रचना काल को चार विभागों में बाँटा –

   1. छन्दः काल –1200 ई.पू. से 1000 ई.पू
   2. मन्त्रकाल –1000 ई.पू. से 800 ई.पू
   3. ब्राह्मणकाल –800 ई.पू. 600 ई.पू.
   4. सूत्रकाल –600ई.पू. से 400 ई.पू.

   मैक्समूलर ने छन्दःकाल को प्रचीनतम मानते हुए ऋग्वेद का रचनाकाल 1200 ई. पू. से 1000 ई.पू. निर्धारित किया किन्तु कालान्तर में मैक्समूलर ने ही अपने इस मत को अमान्य कर दिया। बोघाजकोई से शिलालेख के प्राप्त होने के उपरान्त उनका मत पूर्णतः निरस्त हो गया।

2) **विन्टरनित्स** – जर्मनी के ही प्राच्यविद्याविशारद विन्टरनित्स ने वेदों का रचनाकाल 2500 ई.पू. से 2000 ई.पू. माना है किन्तु वे स्वयं इस समयसीमा के विषय में निर्भ्रान्त नहीं हैं।

3) **याकोबी** – जर्मनी के ही प्रसिद्ध इतिहासविद् तथा ज्योतिर्विद याकोबी ने वेदों के कालनिर्धारण के विषय में अपना मौलिक दृष्टिकोण दिया है। उन्होंने कल्पसूत्र के विवाह प्रकरण में उल्लिखित इस वाक्य **"ध्रुवा इव स्थिरा भव"** के आधार पर ज्योतिर्विज्ञान के माध्यम से ध्रुवनक्षत्र की गणना द्वारा वेदों का रचनाकाल 4500 ई.पू. 2500 ई.पू. तक निर्धारित किया है।

4) **मैक्डोनल** – मैक्डोनल ने अपने ग्रन्थ History of Sanskrit literature में वेदरचना के प्रारम्भिक कालनिर्णय के लिये विविध पाठान्तरों को आधार बनाकर वेदों का रचनाकाल 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. तक निर्धारित किया है।

1.4 वैदिक संहिताओं का परिचय

महर्षि वेदव्यास के द्वारा वेद की जिन चार संहिताओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) का निर्माण किया गया, उनके पौर्वापर्य के विषय में विद्वानों में मतभेद है।

विष्णुपुराण तथा वैदिकभाष्यकार सायण ने यजुर्वेद को सर्वोपरि माना है किन्तु पौराणिक परम्परा व्यास के द्वारा अपने शिष्यों के वेदाध्यापन का जिस क्रम में उल्लेख करती है, तदनुसार संहिताओं का क्रम है– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता। पुराणों में कहा गया है कि महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने क्रमशः पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद का उपदेश किया था। अथर्ववेद संहिता तथा उपनिषद् भी वैदिक संहिताओं के इसी क्रम का समर्थन करते हैं। इन चतुर्विध संहिताओं का परिचय क्रमशः इस प्रकार है –

1.4.1 ऋग्वेद संहिता

वैदिक वाङ्मय में ऋक् संहिता का पाठ सर्वप्रथम विहित है। तैत्तिरीय संहिता में यज्ञानुष्ठानों में यजुष् तथा साम से किये गये विधान की अपेक्षा ऋचाओं से किये गये विधानों को सुदृढ बताकर ऋक् संहिता को सर्वाधिक महत्त्वशाली बताया गया है– **'यद् वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद्दृढम्।'** (तै. सं. 65-103)।

'ऋचां समूहः ऋग्वेदः' ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है। 'ऋचा' शब्द **'ऋच् स्तुतौ'** धातु में क्विप् प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है– स्तुति। **ऋच्यते स्तूयते यया सा ऋक्** अर्थात् ऐसे मन्त्र, जिनमें देवताओं की स्तुतियाँ हों, ऋक् या ऋचा कहलाते हैं।

ऋग्वेद में वेद के त्रिस्वरूपात्मक मन्त्रों में से केवल छन्दोबद्ध (पद्यात्मक) मन्त्रों का ही संकलन है जैसा कि जैमिनि का वचन है – अर्थानुरूप पादव्यवस्था वाले छन्दोबद्ध मन्त्र ही ऋक् (ऋचा) कहलाते हैं – **तेषामृक्यत्रार्थवशेनपादव्यवस्था।** (जै.मी. सू. 2-1-35)

वेदभाष्यकार सायण ने ऋक् शब्द की व्युत्पत्ति अर्च् धातु से मानी है उनके अनुसार– देवता क्रिया या यागगतसाधनविशेष की प्रशंसा करने के कारण इन्हें ऋक् या ऋचा कहा गया है।

1) **ऋग्वेद का विभाग क्रम** – ऋग्वेद संहिता का विभाजन दो रूपों में प्राप्त होता है– (1) मण्डलक्रम विभाग (2) अष्टकक्रम विभाग। सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता में (बालखिल्य सूक्तों को छोड़कर) 10 मण्डल, 85 अनुवाक् तथा 2006 वर्ग हैं। अष्टक क्रमानुसार– ऋग्वेद में 8 अष्टक, 64 अध्याय, 1017 सूक्त है। इस क्रम में प्रति अष्टक 8 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्गों में अनिश्चित संख्या में ऋचायें हैं। मण्डल क्रमानुसार भी ऋग्वेद संहिता में कुल 1017 सूक्त हैं। इन सूक्तों के अतिरिक्त परिशिष्ट रूप में 11 सूक्त बालखिल्य नाम से प्रसिद्ध है। खिल का अभिप्राय है परिशष्टरूप में संकलित मन्त्र। अधुना ऐतिहासिक आधार के कारण मण्डलक्रम विद्वानों में अधिक लोकप्रिय है।

   शौनक-अनुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद संहिता में (खिलसूक्त मन्त्र सहित) 10580 मन्त्र हैं–

ऋच्चां दश सहस्त्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्।। अनुवाकानुक्रमणी –43

ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों में वैषम्य है। कात्यायन ने ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या 10552, नारायणभट्ट ने (अष्टकक्रमानुसार)10472 तथा खिलसूक्तों सहित मन्त्र संख्या 10552 मानी है। इस संख्याभेद का कारण यह है कि ऋग्वेद में कुछ ऋचायें ऐसी हैं जो अध्ययन काल में चतुष्पदा किन्तु प्रयोगकाल में द्विपदा हो जाती हैं। इन्हें नैमित्तिक द्विपदा ऋचायें कहते हैं। कुछ ऋचायें नित्य द्विपदा भी हैं।

2) **ऋग्वेद के मन्त्रदृष्टा ऋषि (वंशमण्डल) – ऋषति पश्यति इति ऋषिः। 'ऋषिर्दर्शनात्'** अर्थात् वेदमन्त्रों का प्रथम दर्शन करने वाले सिद्ध पुरुष ऋषि हैं। निरुक्तकार ने **'साक्षात्कृतधर्माणो ऋषयः'** (नि. 2-11) कहकर वैदिक ऋषियों के दो प्रकार बतायें हैं प्रथम वे, जिन्होंने अपने तपोबल से मन्त्रों का साक्षात्कार किया द्वितीय वो, जो स्वयं मन्त्रों के साक्षात्कर्ता न होकर उपदेष्टा मात्र थे।

ऋग्वेद के मण्डलों का विभाजन प्रायः ऋषियों की दृष्टि से किया गया है। महर्षि कात्यायन ने ऋग्वैदिक ऋषियों की तीन श्रेणियाँ विभाजित की हैं– 1) शतर्चिन, (2) माध्यम, (3) क्षुद्रसूक्त महासूक्त।

इनमें शतर्चिन ऋषि वे मन्त्रदृष्टा ऋषि हैं जिन्होंने सूक्तों में सौ से अधिक या कम मन्त्रों का संकलन किया है। इन ऋषियों का सम्बन्ध ऋग्वेद के प्रथम मण्डल से है। कात्यायन ने इन ऋषियों की संख्या 16 बताई है– मधुच्छन्दा, मेघातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, प्रस्कण्व सव्य, नोधा, पराशर गोतम, कुत्स, काश्यप, कक्षीवान् पुरुच्छेद, दीर्घतमा तथा अगस्त्य।

द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक जो मन्त्र हैं, वे जिन ऋषियों के द्वारा दृष्ट हुए, उन्हें माध्यम कहा गया। इन मण्डलों को वंश या गोत्रमण्डल भी कहा जाता है क्योंकि इसमें समाविष्ट मन्त्रों का साक्षात्कार किसी एक ही ऋषि या उसके वंशजों ने किया है। द्वितीय मण्डल से अष्टम मण्डल तक के मन्त्र दृष्टा ऋषि क्रमशः गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ, कण्व तथा उनके वंशज हैं।

ऋग्वेद के नवम मण्डल के अनेक ऋषि हैं। इस मण्डल को सोम की स्तुति में समर्पित होने के कारण 'पवमान मण्डल' भी कहते हैं दशम मण्डल में कुछ सूक्तों में अत्यल्प तथा कुछ में अत्यधिक मन्त्र हैं। अतः इनके मन्त्र दृष्टा ऋषियों को 'क्षुद्रमहासूक्ताः' कहा गया है।

ऋग्वेद के सब ऋषि ब्राह्मण थे, परन्तु दशम मण्डल के विषय में ऐसी भी मान्यता है कि दशम मण्डल के अन्तर्गत कुछ ऋषि ब्राह्मणेतर भी थे।

3) **ऋग्वेद में स्तुत्य देवता** – ऋग्वेद के मन्त्रों में विविध देवताओं का भावभंगिमापूर्वक स्तवन किया गया है। 'देव' शब्द दिव् धातु से निष्पन्न होता है जिसका तात्पर्य है– प्रकाशित होना। निरुक्तकार ने भी लिखा है–**'देवो दानात् द्योतनाद् दीपनाद् वा'** (निरु.दै.का. 1-5) लोक में भ्रमण करने वाले, प्रकाशित होने वाले या भोज्यादि सारे पदार्थ देने वाले को देवता कहा है। यास्क के अनुसार– देवता तीन प्रकार के हैं– (1) पृथिवीस्थानीय (यथा–अग्नि) (2) अन्तरिक्षस्थानीय (यथा–इन्द्र, वायु) (3) द्युस्थानीय (यथा–सूर्य) (निरु. 4-7)। ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्हीं त्रिविध देवताओं की नामान्तरों से स्तुतियाँ की गयी हैं।

वैदिक ऋषियों ने जिन प्राकृत शक्तियों की स्तुति ऋग्वेद में की है वह उनके स्थूल स्वरूप की नहीं, अपितु उनकी अधिष्ठात्री चेतनशक्ति की है। वैदिक देवता वस्तुतः प्रकृति की ही विविध शक्तियों का दैवीकरण है। ऋग्वेद में प्रकृति के कण-कण में विद्यमान प्रत्येक उस शक्ति का देवतारूप में स्तवन किया गया है। जैसा कि ऋग्वेद का वचन है– **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।'** (ऋ.वे. 1/64/46) निरुक्त में भी कहा गया है– **'महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।'**(निरु.दै.का. 7)।

ऋग्वेद (1/139/11) में 33 देवताओं का उल्लेख किया गया है। इनमें 11 पृथिवीस्थानीय, 11 अन्तरिक्षस्थानीय तथा 11 द्युस्थानीय हैं। ऋग्वेद में दो स्थानों (3-9-9 तथा 10-52-6) में 3339 देवताओं का कथन भी किया गया है। सायण ने इनमें समन्वय करते हुए लिखा है कि देवता तो 33 ही हैं परन्तु देवताओं की विशाल महिमा बताने के लिये अन्यत्र 3339 देवों का भी उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेदीय देवताओं में तीन देवता अपने वैशिष्ट्य के कारण नितान्त प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम स्थान इन्द्र, द्वितीय स्थान अग्नि तथा तृतीय स्थान वरुण का है। इन्द्र वैदिक आर्यों का राष्ट्रिय देवता है। वह विजयप्रदाता देवता होने के कारण सबसे अधिक ओजस्वी तथा वीररस मण्डित मन्त्रों के द्वारा संस्तुत है। ऋग्वेदीय देवताओं में इन्द्र का महत्त्व इसी से प्रमाणित हो जाता है कि ऋग्वेद के लगभग 258 सूक्तों में इन्द्र का ही स्तवन किया गया है जबकि याज्ञिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने से अग्नि का द्वितीय स्थान है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का आरम्भ ही अग्नि की स्तुति से होता है। यही नहीं, सम्पूर्ण ऋग्वेद में लगभग 200 सूक्त अग्नि की स्तुति में ही समर्पित है। इसी प्रकार ऋग्वेद में वरुण देवता का अनेक सूक्तों में स्तवन किया गया है, वहाँ उन्हें प्राणिमात्र की भावनाओं को जानने वाले तथा दण्ड और न्याय के देवता के रूप में चित्रित किया गया है। देवियों में 'उषा' का स्थान सर्वोपरि है। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं में मित्रावरुण, वायु, अश्विनी कुमार, विश्वेदेवा, मरुत्, त्वष्टा, बृहस्पति, सविता, द्यावापृथिवी, विष्णु, सूर्य, उषा, रुद्र, अर्यमा, आदित्य, पूषा, विवस्वान्, पर्जन्य, अपांनपात्, मातरिश्वा इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

4) **ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्द** – ऋग्वेद में ऋक् (ऋचा) का अभिप्राय छन्दोबद्ध मन्त्रों से है। छन्द वह है जो मनुष्यों का प्रसन्नता प्रदान करे, यज्ञादि की रक्षा करे। (निरु. दैवतकाण्ड 1-12)। शौनक की छन्दोनुक्रमणी में ऋग्वेद में प्रयुक्त छन्दों की संख्या 19 बतलाई गयी है। ये वैदिक छन्द हैं– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, अतिधृति, एकपदा, द्विपदा, प्रगाथबार्हत, काकुभ, महाबार्हत। इसमें से ऋग्वेद में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले छन्दों में प्रथम स्थान त्रिष्टुप् का तथा द्वितीय स्थान गायत्री छन्द का है।

5) **ऋग्वेद के ऋत्विज्** – वैदिक संहिताओं में से ऋग्वेद संहिता का ऋत्विज् है– 'होता'। इसका कार्य देवताओं की स्तुतिपरक ऋचाओं को एकत्रित करके विविध यज्ञों में उनका शंसन करना है। 'होता' नामक ऋत्विज् के तीन अन्य सहायक होते थे– मैत्रावरुण (प्रशास्ता), अच्छावाक् और ग्रावस्तुत्। इन चारों को संयुक्तरूप से 'होतृगण' या 'होतृमण्डल' कहा जाता था। होता के निमित्त ऋचाओं का 'ऋग्वेद' में संकलन होने से इसे 'होतृवेद' भी कहा जाता है।

6) **ऋग्वेद की शाखायें** – वैदिक संहिताओं पर गम्भीर मनन-चिन्तन के पश्चात् कालान्तर में विविध ऋषि सम्प्रदायों के द्वारा मन्त्रों का पौर्वापर्य, न्यूनाधिक्य, उच्चारण तथा अनुष्ठान विधियों में जो भेद किया गया उनकी जो परम्परायें विकसित हुईं उन्हें शाखायें कहते हैं।

पातञ्जल महाभाष्य में ऋग्वेद की 21 शाखाओं का निर्देश किया गया है–'**एकविंशतधाबाह्वृच्यम्**'(महा.पश्पशा.)। इनमें से ऋग्वेद की प्रमुख पाँच शाखायें थीं– शाकल, वाष्कल, आश्वलायनी, शांखायनी, तथा मण्डूकायनी।

सम्प्रति ऋग्वेद की केवल एक ही शाखा उपलब्ध है–शाकलशाखा। इस शाखा में प्रत्येक सूक्त पर उसके ऋषि, देवता, छन्द तथा विनियोग का उल्लेख है ऐसी प्रसिद्धि है कि इस शाखा में अन्य शाखाओं में जो अधिक मन्त्र थे (विशेषतः बाष्कल शाखा में), वे भी सम्मिलित हैं। इसमें अष्टम मण्डल के बहुत से मन्त्रों को खिलों के अन्तर्गत रखा गया है।

7) **ऋग्वेद का वर्ण्य-विषय** – ऋग्वेद के मन्त्रों में ऋषियों ने अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये विविध देवताओं की अतीव सुन्दर तथा भावाभिव्यञ्जक स्तुतियाँ की हैं। अतः ऋग्वेद का प्रतिपाद्य विषय मूलतः देवस्तुतियाँ ही हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त इसमें प्रत्येक मण्डल का अपना वैशिष्ट्य भी है, यथा– ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से सप्तम मण्डल तक एक ही विशिष्टकुल के ऋषियों की प्रार्थनायें संग्रहीत हैं। इनमें विविध देवताओं से सम्बद्ध मन्त्रों का संकलन है। नवम मण्डल का नाम '**पवमान मण्डल**' है। इसमें यज्ञ के अवसर पर सोमरस की आहुति के समय प्रयुक्त मन्त्रों का संग्रह हैं। ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मण्डल सम्भवतः अन्य मण्डलों से अर्वाचीन है। इनमें दोनों ही मण्डलों में सूक्तों की संख्या समान (191) है, जो स्वयं में विशिष्ट है।

ऋग्वेद की ऋचाओं में न केवल वैदिक ऋषियों की देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा तथा समर्पण भाव दृष्टिगोचर होता है, अपितु उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक कलात्मक पक्ष सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर भी प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से ऋग्वेद का दशम मण्डल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद के इस मण्डल में एक ओर दार्शनिक सूक्तों (हिरण्यगर्भ-पुरुष सूक्तादि) में, जहाँ सृष्टि-प्रलय, लोक-परलोक, पुनर्जन्म जैसे गम्भीर दार्शनिक विषयों का निरूपण किया गया है। वहीं दूसरी ओर मानव व्यक्तित्व की दुर्बलताओं, महानता तथा संवेदनात्मक पक्षों को भी चित्रित किया गया है, उदाहरण के लिये– ऋग्वेद के दशम मण्डल के अक्षसूक्त (2-34) में, जहाँ द्यूतपट्ट पर फेंके गये पासों को देखकर उन्मत्त होने वाले एक जुआरी के मानसिक संताप का वर्णन कर संतोषरूप धन से उस दुर्बलता को दूर करने का सन्देश दिया गया है। इसी प्रकार संवाद सूक्तों के अन्तर्गत पुरुरवा-उर्वशी संवाद में प्रणय प्रसंग की त्रासदी में जहाँ मानवीय संवेदना को दर्शाया गया है वहीं यम-यमी संवाद में उच्छ्रंखलवासना पर यम के दृढ़ चरित्र की विजय को प्रदर्शित किया गया है। यही नहीं, एक ओर सरमा-पणि संवाद में दस्युओं की समाज विरोधी गतिविधियाँ और पणियों की स्वार्थपरता का चित्रण किया गया है, तो वहीं दानस्तुतियों में निःस्वार्थ दान के महत्त्व तथा ऋग्वेद (दशम मण्डल) के अन्तिम सूक्त (संज्ञान सूक्त) में 'सङ्गच्छध्वं संवदध्वम्' की उदात्त भावनाओं का मंगलमय संदेश दिया गया है।

8) **ऋग्वेद के महत्त्वपूर्ण सूक्त** – ऋग्वेद में दार्शनिक तथा सामाजिक महत्त्व के अनेक सूक्त हैं जिनका अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। ये सूक्त इस प्रकार हैं–

दार्शनिक महत्त्व के सूक्त –

1) **नासदीय सूक्त (10/129)** – इस सूक्त में सृष्टि की आदिम अवस्था वर्णित है। इसमें मूल सत्ता को सत्-असत् से परे कहा गया है। उस समय रात-दिन का कोई भेद नहीं था। केवल एक (तत्त्व) था जो अपनी शक्ति से प्राणवायु के बिना भी श्वास ले रहा था। इसके अलावा सृष्टि का कोई भी चिह्न नहीं था। इसी एक तत्त्व में 'काम' रूप मन का विकार हुआ। ऋषियों ने इसी कामरूपादि तत्त्व में जगत् का मूल माना। यह सूक्त 'नासत्' पद से आरम्भ होने के कारण 'नासदीय सूक्त' कहलाया।

2) **हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121)** – इसे 'प्रजापति सूक्त' भी कहते हैं। इसमें वैदिक ऋषियों ने बहुदेववाद की समस्या का समाधान करके हिरण्यगर्भ (प्रजापति) रूप एक देव की कल्पना कर उसे सृष्टि का मूल माना है। इस सूक्त में वैदिक ऋषि श्रद्धा से अभिभूत होकर प्रश्न उपस्थित करता है– **'कस्मै देवाय हविषा विधेम।'** यहाँ 'कः' पद प्रजापति का ही द्योतक है जो सृष्टि की कामना करता है, वह है– 'कः'। प्रजापति ने सृष्टि की कामना की अतएव वह भी 'कः' है। इस सूक्त में कहा गया है कि जगत् के विकास क्रम में हिरण्यगर्भ ही सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ था। उसी से सृष्टिक्रम आगे बढा।

3) **पुरुष सूक्त (10/190)** – इस सूक्त में सृष्टि का मूल सहस्रशिर आँखों तथा चरणों वाले पुरुष को बताया गया है तथा भूत-वर्तमान-भविष्य में शाश्वत इसी पुरुष तत्त्व से सर्वप्रथम विराट तदनन्तर जीवात्मा पुनः देव, मनुष्य (ब्राह्मणादि), तिर्यगादि, चतुर्वेदादि तथा समस्त चराचर जगत् की सृष्टि हुई। यह सूक्त विविध प्राचीन आध्यात्मिक तथा सामाजिक अवधारणाओं का स्रोत होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अद्वैतवेदान्त के **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** का स्रोत इसी सूक्त में विद्यमान है।

4) **वागम्भृणी सूक्त (10/125)** – इस सूक्त में शब्दब्रह्म को व्यक्त करने वाली 'वाक्' को परब्रह्मस्वरूप माना गया है, जिससे नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। यह 'वाक्' परमात्मा की शक्ति है जो समस्त लोकों तथा इस जगत् के सभी तत्त्वों में व्याप्त है तथा यही प्राणियों में प्रेरणामूर्ति बनकर उन-उन भावों की सृष्टि करती है। भाषाशास्त्रीयदृष्टि से यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

5) **यम सूक्त (10/135)** – इस सूक्त में यमलोक से सम्बद्ध रहस्यों का वर्णन है।

इसी प्रकार पितृसूक्त, मृत्युसूक्तादि भी पितृलोक मृत्यु आदि से सम्बद्ध रहस्यों को उद्घाटित करते हैं।

सामाजिक/सांस्कृतिक महत्त्व के सूक्त –

1) **श्रद्धा सूक्त (10/151)** –इस सूक्त में 'श्रद्धा' की देवता के रूप में उपासना की गयी है। जीवन में सत्य को धारण करने से श्रद्धा का आविर्भाव होता है यही लोक में धनप्राप्ति का भी स्रोत है–

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूल्या श्रद्धया विन्दतेवसु।।ऋग्वे. **(10/151/4)**

यह सूक्त हिन्दी के छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी का मूल स्रोत है।

2) **संवाद सूक्त** – ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में संवाद-विधि के माध्यम से पुराकथाओं का नाटकीय शैली में वर्णन प्राप्त होता है। इन्हें ही 'संवाद सूक्त' कहा गया है। इनमें तीन संवाद सूक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं– (क) पुरुरवा-उर्वशी संवाद **(10/185)** (ख) यम-यमी संवाद **(10/10)** (ग) सरमा-पणि संवाद **(10/130)**।

पुरुरवा-उर्वशी संवाद के 18 मन्त्रों में पुरुरवा-उर्वशी के अकुण्ठित प्रणय तथा अन्त में उर्वशी के निष्ठुरतापूर्वक स्वर्ग चले जाने की मार्मिक कथा वाद-संवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गयी है। महाकवि कालिदास प्रणीत 'विक्रमोर्वशीयम्' का मूलस्रोत यही संवाद सूक्त है।

यम-यमी संवाद मानव चरित्र की उत्कृष्टता का प्रतीक है। इसमें वासनोत्कण्ठित यमी की अपने भाई यम के प्रति आसक्ति तथा समागम की प्रार्थना करने पर यम के द्वारा उसे अनुचित बताते हुए अन्य पुरुष के वरण का परामर्श देने सम्बन्धी कथा का वर्णन है।

सरमा-पणि संवाद में पणियों (स्वार्थी व्यापारियों) के द्वारा देवताओं की गाय चुराने तथा पणियों को समझाने के लिये दूत के रूप में प्रेषित सरमा के परस्पर संवाद का वर्णन है।

3) **दान-स्तुतिपरक सूक्त** – कात्यायन सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के 22 सूक्तों में दानस्तुतियाँ हैं जबकि आधुनिक विद्वान् इनकी संख्या 68 मानते हैं। प्रायः अष्टम मण्डल में अधिकांश दानस्तुतियाँ हैं। इन सूक्तों में दान की गौरवशालिता का वर्णन है तथा अन्नदान को महादान बताया गया है–

यं आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दति।।
(ऋग्वे. **10/117/2)**

4) **संज्ञान सूक्त** – यह सूक्त मानव-समाज को एकता के सूत्र में निबन्धित रहने तथा परस्पर सद्भाव बनाये रखने का सन्देश देता है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।(ऋग्वे. **10/191/2)**

यह ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के परिशिष्टरूप-खिलसूक्तों में श्रीसूक्त, बालखिल्यसूक्त, सुषुम्नीसूक्त, एकादिसूक्त, रात्रिसूक्त, आयुष्यसूक्त, मेधा सूक्त, शिवसंकल्पसूक्तादि भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक ही वेद की परशाखा से किसी अपेक्षा को लेकर जिस अंश का ग्रहण किया जाता है, उन्हें 'खिल' कहते हैं।

1.4.2 यजुर्वेद संहिता

यज्ञादि कर्मों के प्रतिपादक गद्यात्मक मन्त्रों को 'यजुष्' कहा जाता है–**'गद्यात्मको यजुः'** अथवा **'शेषे यजुः'** (जै.मी.सू.) अथवा **'अनियताक्षरावसानो यजुः'** अर्थात् जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो, वह 'यजुष्' है। यजुर्वेद कर्मकाण्डप्रधान है। सायण ने यजुर्वेद को भित्तिस्थानीय तथा ऋक् और साम को चित्रस्थानीय बताया है–'भित्तिस्थानीयोयजुर्वेदश्चित्रस्थानीयावितरौ'(तैत्तिरीयभाष्यभूमिका)। यास्क ने भी 'यजुष्' शब्द की निरुक्ति 'यज्' धातु से बतायी है– यजुर्यजतेः (निरु. 7-12) जिससे यज्ञ से यजुर्वेद का साक्षात् सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

किस यज्ञ में किन मन्त्रों का प्रयोग किया जाना अपेक्षित है, इसकी विधियाँ यजुर्वेद में ही वर्णित हैं। अतः आध्वर्यव कर्म के लिये उपादेय यजुषों (गद्यात्मक मन्त्रों) का संग्रह ही यजुर्वेद है।

1) **यजुर्वेद के विभाग** – यजुर्वेद के दो विभाग हैं– कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद। यजुर्वेद के कृष्णत्व तथा शुक्लत्व के विषय में एक आख्यान प्रसिद्ध है कि वेदव्यास से यजुर्वेद संहिता उनके शिष्य वैशम्पायन को प्राप्त हुई तथा वैशम्पायन से याज्ञवल्क्यादि शिष्यों में संक्रान्त हुई। कदाचित् वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य पर क्रुद्ध हो गये तथा उनसे अधीतविद्या (मन्त्रराशि) लौटाने को कहा। तब याज्ञवल्क्य ने योगबल से अधीतवेद विद्या का वमन कर दिया जिसको वैशम्पायन के अन्य शिष्यों ने तित्तिर बनकर धारण कर लिया जिससे यजुर्वेद कृष्ण हो गये। आगे चलकर याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना कर उनसे पुनः जिन यजुषों को प्राप्त किया, वे शुक्ल यजुर्वेद कहलाये।

   यजुर्वेद के कृष्णत्व और शुक्लत्व का मूलभूत कारण वस्तुतः यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्रों का संकलन है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ ब्राह्मणों का भी सम्मिश्रण है।

   यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं– ब्रह्मसम्प्रदाय तथा आदित्यसम्प्रदाय। इनमें ब्रह्मसम्प्रदाय का प्रतिनिधि कृष्ण यजुर्वेद है तथा आदित्य सम्प्रदाय का प्रतिनिधि शुक्ल यजुर्वेद है।

2) **यजुर्वेद के ऋषि** – यजुर्वेद के मन्त्रदृष्टा प्रायः वही ऋषि हैं, जो ऋग्वेद के मन्त्रों के दृष्टा थे तथापि यजुर्वेद के कर्मकाण्डप्रधान होने से याज्ञिक अनुष्ठानादि के निमित्त परमेष्ठ्यादि ऋषि बताये गये हैं। इसमें कारण यह है कि ऋग्वेद में ऋषियों की दृष्टि से मन्त्र संकलित किये गये हैं, जबकि यजुर्वेद में यज्ञविधान को लक्ष्य बनाकर मन्त्रों का संकलन किया गया है। अतः जो ऋषि जिस यज्ञ का प्रवाचक था, वही (ऋषि) उस यज्ञ प्रसंग में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का ऋषि व्यवस्थित कर दिया गया।

   यज्ञ की दृष्टि से ऋषियों का आर्षेयत्व तैत्तिरीय संहिता में भी बताया गया है। 'आर्षेय' का तात्पर्य है– यज्ञानुष्ठानादिकर्म में मन्त्रविशेष का स्मरणकर्ता ऋषि। इस आर्षेयत्व की दृष्टि से ही तैत्तिरीय संहिता में पाँच काण्ड निर्दिष्ट किये गये हैं– प्राजापत्यकाण्ड, सौम्यकाण्ड, आग्नेयकाण्ड, वैश्वदेवकाण्ड, स्वयम्भुवकाण्ड।

3) **यजुर्वेद के ऋत्विज्** – यजुर्वेद का ऋत्विज् अध्वर्यु कहलाता है। यज्ञकर्म में इसके तीन सहायक होते हैं– प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा तथा उन्नेता। यजुर्वेद के

ऋत्विजों की सामूहिक संज्ञा 'अध्वर्युवर्ग' या 'अध्वर्युमण्डल' है। यजुर्वेद के इन ऋत्विजों का कार्य यज्ञानुष्ठान में यज्ञभूमि तैयार करना, वेदि निर्माण, यज्ञीय पात्रों समिधादि की व्यवस्था करना, अग्नि को समिद्ध करना, पुरोडाश पकाना आदि जितने भी कृत्य हैं, उनका यजुष् मन्त्रों का विनियोग करते हुए सम्पादन करना था। अध्वर्यु के द्वारा विनियुक्त मन्त्रों का यजुर्वेद में संकलन होने से इस वेद को 'अध्वर्युवेद' भी कहते हैं।

4) **यजुर्वेद की शाखायें** – यजुर्वेद की शाखाओं के विषय में पतञ्जलि का मत है–**'एकशतमध्वर्युशाखाः'** अर्थात् यजुर्वेद की लगभग 100 शाखायें थीं। आचार्यों ने कृष्ण यजुर्वेद की 86 तथा शुक्ल यजुर्वेद की 15 शाखाओं (86+15 =101 शाखाओं) का उल्लेख किया है किन्तु सम्प्रति यजुर्वेद की केवल छः शाखायें ही उपलब्ध हैं। कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखायें (संहितायें) हैं–(1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठल। शुक्ल यजुर्वेद की केवल दो शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) काण्व (वाजसनेयी) (2) माध्यन्दिन संहिता।

5) **यजुर्वेद का वर्ण्य-विषय (शाखाक्रमानुसार)** – यजुर्वेद की अवान्तर शाखाओं का परिचय निर्देशपूर्वक प्रतिपाद्य विषय क्रमशः द्रष्टव्य है–

क) **कृष्ण यजुर्वेद संहिता** – कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मणों का भी सम्मिश्रण है इसकी चारों शाखाओं (तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ तथा कपिष्ठल शाखा) का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1) **तैत्तिरीय संहिता** – वैशम्पायन के शिष्यों द्वारा तित्तिर बनकर याज्ञवल्क्य के द्वारा वमन किये गये यजुषों का भक्षण करने के कारण इस संहिता का नाम तैत्तिरीय संहिता पड़ा। यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रतिनिधि शाखा है। इसमें 7 काण्ड, 44 प्रपाठक तथा 931 अनुवाक् हैं।

विषय-वस्तु की दृष्टि से प्रथम काण्ड के प्रथम प्रपाठक में दशपूर्णमास के मन्त्र, द्वितीय प्रपाठक में अग्निष्टोम तथा सोमक्रय से सम्बद्ध मन्त्र हैं। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, पष्ठ, सप्तम तथा अष्टम प्रपाठक में क्रमशः पशुयाग मन्त्र, ग्रहयाग से सम्बद्ध मन्त्र, पुनराधानविधायक मन्त्र, याजमानकाण्ड याजमानब्राह्मण तथा राजसूययाग से सम्बद्ध मंत्रों को संकलित किया गया है।

द्वितीय काण्ड के प्रथम प्रपाठक में पशुविधान, द्वितीय से लेकर पञ्चम प्रपाठक तक इष्टिविधान तथा षष्ठ प्रपाठक में अवशिष्टकर्मों का अभिधान किया गया है।

तृतीय काण्ड के पाँच प्रपाठकों में क्रमशः न्यूनकर्माभिधान, पावमानग्रहादि का व्याख्यान वैकृत विधियों का अभिधान इष्टिहोम तथा इष्टिशेष का वर्णन है।

चतुर्थ काण्ड के सात प्रपाठकों में क्रमशः अग्निचित्यंगमन्त्र के पाठ, देवयजनग्रह, चितिवर्णन पञ्चमचितिशेष का निरूपण, होमविधि तथा परिषेचनसंस्कार और वसोर्धारादिष्टसंस्कारों का वर्णन किया गया है।

पञ्चम काण्ड में भी सात प्रपाठक हैं जिनमें क्रमशः उख्याग्निकथन, चित्युपक्रम, चिति का निरूपण, इष्टकात्रय का कथन वायव्यपशवादि निरूपण, उपानुवाक्य, उपानुवाक्य से अवशिष्ट कर्मादि का निरूपण किया गया है।

षष्ठ काण्ड के छः प्रपाठकों का वर्ण्य-विषय 'सोममन्त्रब्राह्मण' है।

सप्तम काण्ड के पाँच प्रापठकों में अश्वमेघ से सम्बद्ध मन्त्र, षड्यात्रा, सत्रजात, सत्रकर्म का निरूपण तथा सत्रविशेष का वर्णन किया गया है।

2) **मैत्रायणी** –कृष्ण यजुर्वेद की इस शाखा का प्रवचन मित्रयु नामक आचार्य ने किया था। अतः यह शाखा (संहिता) 'मैत्रायणी' नाम से प्रसिद्ध हुई।

> दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिः मित्रयुर्नृपः।
> मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः।।(हरिवंश 1-32-75–76)

मैत्रायणी संहिता में चार काण्ड तथा 54 प्रपाठक हैं। इनमें से 19 प्रपाठकों में केवल मन्त्र हैं तथा 25 में मात्र ब्राह्मण हैं तथा 10 प्रपाठकों में दोनों का सम्मिश्रण है। अतः कृष्ण यजुर्वेद की अन्य संहिताओं की तरह इसका स्वरूप भी मन्त्रब्राह्मणात्मक है। मैत्रायणी संहिता में 2144 मन्त्र हैं, जिनमें 701 मन्त्र ऋग्वेद से उद्धृत हैं।

मैत्रायणी संहिता में प्रधानतः दशपूर्णमासेष्टि ग्रहग्रहण (सोमयाग), अग्न्युपस्थान, अग्न्याधान, पुनराधान, अग्निहोत्र, चातुर्मास्य, वाजपेय काम्येष्टियाँ, राजसूय, अग्निचिति, सौत्रामणि तथा अश्वमेध का विवेचन किया गया है। इस संहिता में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते, यथा दृगोनामिक प्रकरण। इसमें गाय के नामों का उल्लेख करते हुए उनकी महिमा बतायी गयी है।

3) **काठक संहिता** – कृष्णयजुर्वेदीय शाखाओं में यह शाखा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार– यह शाखा इतनी लोकप्रिय थी कि गाँव-गाँव में इस शाखा का प्रचार था–**'ग्रामे ग्रामे कठं कालापकं च प्रोच्यते'** (पा.सू.4-3-101 पर भाष्य)। कठ नाम के आचार्य ने इसका प्रवचन किया था इसलिये इसे काठक संहिता कहा जाता है। ये यजुर्वेद के प्रथम आचार्य वैशम्पायन के नव अन्तेवासी शिष्यों (आलम्वि, कलिंग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ तथा कलापी) में अन्यतम थे। 'कठ' महर्षि भरद्वाज के शिष्य तथा बहनोई थे।

काठक संहिता के पाँच खण्ड हैं– इठिमिका, मध्यमिका ओरिमिका, याज्यानुवाक्या तथा अश्वमेधाद्यनुवचन। प्रथम चार खण्डों का अवान्तर विभाजन स्थानकों में किया गया है जिनमें 40 स्थानक हैं जबकि पञ्चम खण्ड 13 अनुवचनों में विभाजित है। विषय वर्णन की दृष्टि से प्रथम खण्ड में पुरोडाश, अध्वर, अग्निहोत्र, पशुवध, वाजपेय, राजसूयादि का वर्णन, द्वितीय (माध्यमिका) खण्ड में सावित्र इत्यादि का निरूपण है तथा ओरिमिका नामक तृतीय खण्ड में सत्र तथा सवयागों सौत्रामणि यदक्रन्द तथा हिरण्यगर्भ का वर्णन है। अन्तिम खण्ड में पन्थानुवचन हैं। इसमें मंत्रब्राह्मणों की सम्मिलित संख्या 1800 है।

इस संहिता की स्वरप्रक्रिया अन्य संहिताओं से भिन्न है। उपनिषद् साहित्य में अन्यतम 'कठोपनिषद्' का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद की इसी शाखा से है।

4) **कपिष्ठल संहिता** – कपिष्ठल कठ शाखा की एक अपूर्ण प्रति ही उपलब्ध होती है। अतः इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। केवल इतना

ही ज्ञात होता है कि इसका विभाजन ऋग्वेद के समान अष्टकक्रम में था तथा इसकी विषय-वस्तु काठक संहिता के समान थी।

ख) **शुक्ल यजुर्वेद संहिता** – वैशम्पायनोक्त मन्त्र-ब्राह्मणात्मक यजुर्वेद संहिता का परित्यागकर याज्ञवल्क्य ने आदित्य की उपासना करके यजुर्वेद की जिस विशुद्ध मन्त्रात्मक संहिता का प्रवचन किया वह यजुर्वेद संहिता शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयी संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई। वाजसेनी के पुत्र याज्ञवल्क्य द्वारा दृष्ट होने के कारण इस संहिता का नाम वाजसनेयी संहिता पड़ा। वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने आदित्य द्वारा प्राप्त इस शुक्ल यजुर्वेद का प्रवचन जाबालि आदि अपने 15 शिष्यों को दिया। इन शिष्यों के द्वारा प्रवर्तित 15 शाखाओं में से सम्प्रति दो शाखायें ही उपलब्ध होती हैं– (1) माध्यन्दिन (2) काण्व शाखा। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1) **माध्यन्दिन संहिता** – याज्ञवल्क्य के शिष्यों में से 'माध्यन्दिन' नामक शिष्य के द्वारा इस शाखा का प्रवचन किये जाने से इस शाखा का नाम 'माध्यन्दिन' पड़ा अथवा इस अभिधान का द्वितीय कारण यह है कि वाजिरूप सूर्य ने याज्ञवल्क्य को दिन के मध्यकाल में यजुष् मन्त्रों का प्रवचन किया था। कदाचित् इस कारण से इसे माध्यन्दिन संहिता कहा जाता है। माध्यन्दिन संहिता में 40 अध्याय तथा अध्यायों के अन्तर्गत अनेक कण्डिकायें हैं इन कण्डिकाओं की संख्या 1975 है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से माध्यन्दिन संहिता के आरम्भिक दो अध्यायों में दशपूर्णमास इष्टियों के मन्त्रों का संकलन किया गया है। तृतीय अध्याय में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, अग्न्युपस्थापन, चातुर्मास्येष्टि विषयक मन्त्रों को उपन्यस्त किया गया है। चतुर्थ से अष्टम अध्यायों में सोमयागोपयुक्त अग्निष्टोम मन्त्र हैं। नवम-दशम अध्यायों में वाजपेय तथा राजसूययागों से सम्बद्ध मन्त्र हैं। एकादश अध्याय से अष्टादश अध्याय तक अग्निचयन तथा होमविषयक मन्त्र हैं। उन्नीस से इक्कीस अध्यायों तक सौत्रामणी से सम्बद्ध मन्त्रों का संकलन है। बाइसवें अध्याय से पचीसवें अध्याय तक अश्वमेध से सम्बद्ध मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। षड्विंशति अध्याय से लेकर ऊनविंशति अध्यायपर्यन्त 15 अध्याय खिलमन्त्रों का संग्रह है। इनमें अग्निष्टोम, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, पुरुषसूक्त, सर्वमेध पितृमेध, उपनिषद् प्रवर्ग्य से सम्बद्ध वे मन्त्र हैं जिनका विनियोग पूर्व प्रकरण में नहीं हुआ हैं। प्रसिद्ध 'शिवसंकल्प सूक्त' भी इन्हीं खिल मन्त्रों के अन्तर्गत 34वें अध्याय का विषय है तथा इस संहिता का अन्तिम 40वाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है।

2) **काण्व संहिता** – शुक्लयजुर्वेदीय इस संहिता के प्रवचनकर्ता महर्षि कण्व हैं जिनके नाम पर इसे 'काण्व संहिता' कहा जाता है। काण्व संहिता में भी 40 अध्याय हैं, किन्तु माध्यन्दिन संहिता की अपेक्षा मन्त्रों की संख्या इसमें अधिक है। विषय विवेचन की दृष्टि से भी दोनों संहिताओं में साम्य हैं, किन्तु मन्त्रोच्चारण की दृष्टि से काण्व संहिता का माध्यन्दिन संहिता से भेद है। 'काण्व संहिता'–अध्यायी मन्त्रों का उच्चारण ऋग्वेद के समान करते हैं जैसे– 'पुरुषा' का पुरुषाः रूप में ही उच्चारण करते हैं, जबकि माध्यन्दिन संहिता पाठकों की अपनी अलग परिपाटी है। वे 'पुरुषाः' का उच्चारण 'पुरुखा' करते हैं।

श्रौतयागों के स्वरूप को समग्ररूप में जानने के लिये यजुर्वेद की सभी शाखायें नितान्त उपयोगी हैं।

1.4.3 सामवेद संहिता

वैदिक संहिताओं में साम का महत्त्व नितान्त गौरवमय है। बृहद्देवता का कथन है कि जो पुरुष साम को जानता है, वही वेद के समग्र रहस्यों को जानता है–**'सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्'**। 'श्रीमद्भगवद्गीता में **'ओंकारः सर्ववेदानाम्'** (श्रीमद्भगवद्गीता) कहकर वेदों का मूल ओंकार को बताया गया है। ओंकार को ही उद्गीथ भी कहते हैं जो कि भगवत्स्वरूप है। यह ओंकार (उद्गीथ) ही सामवेद का सार है–**'साम्ना उद्गीथो रसः '**(छान्दोग्योपनिषद्)। इसी कारण श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने भी कहा है– **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'** (श्रीमद्.गी. 10-22) शतपथ ब्राह्मण में भी **'ना साम यज्ञो भवति'** कहकर सामवेद के महत्त्व को उद्घाटित किया गया है।

'साम' (सामन्) शब्द का अर्थ है शोभन सुखकर वचन। 'साम' शब्द 'सो' धातु (प्रसादनार्थक शान्त्यर्थक) से 'मानिन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। साम शब्द का दो अर्थों में प्रयोग दृष्टिगत होता है। प्रधानतः ऋग्वेद की ऋचाओं (ऋक्मन्त्रों) पर ऋषियों द्वारा किया जाने वाला गान ही 'साम' कहलाता है जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–**'ऋच्यव्यूढं साम'** (छां.उ. 1/6/1)। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी 'साम' शब्द की निरुक्ति इसी अर्थ में की गयी है–**'सा च अमश्चेति तत्साम्नाः सामत्वम्'** (बृ. 3-1/3/22)। यहाँ 'सा' का अर्थ है 'ऋक्' तथा 'अम' शब्द का अर्थ है षडजादि स्वर अर्थात् साम का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ– ऋक् से सम्बद्ध स्वरप्रधानगायन जिसमें हो, वह 'साम' है। इस प्रकार गानरूपता ही साम का सामत्व है। जैमिनीय सूत्र भी 'गीति' को ही साम की संज्ञा प्रदान करते हैं–**'गीतिषु समाख्या'** (जै.मी.सू. 2-1-37)

यद्यपि 'साम' का तात्पर्य मूलतः गान से है तथापि जिन ऋक् मन्त्रों पर सामगान किया जाता है उन (सामोपयोगी) ऋचाओं के लिये भी 'साम' शब्द प्रयुक्त होता है। ऐसी ऋचाओं को 'सामयोनि' ऋचायें कहा जाता है। सामवेद संहिता मूलतः इन्हीं सामयोनि ऋचाओं तथा उनके गानों का संग्रहमात्र है।

1) **सामवेद के विभाग** – सामवेद संहिता के दो विभाग हैं– (1) आर्चिक संहिता, (2) गानसंहिता। 'आर्चिक' का शाब्दिक अर्थ है– ऋक्समूह। अतः इसके अन्तर्गत सामयोनि ऋचाओं का संकलन है। आर्चिक संहिता के अवान्तर दो विभाग हैं– पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक।

   पूर्वार्चिक में 6 अध्याय (प्रपाठक) हैं। प्रति 6 प्रपाठक में दो खण्ड हैं। प्रति खण्ड में एक दशति है जिसमें छन्द तथा देवताओं की एकता के आधार पर भिन्न-भिन्न ऋषियों के द्वारा द्रष्ट ऋचाओं का संग्रह है। इसमें प्रथम प्रपाठक को अग्निविषयक ऋक् मन्त्रों का समूह होने से आग्नेय काण्ड (पर्व), द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक तक इन्द्र की स्तुति होने से ऐन्द्र काण्ड (पर्व), पञ्चम प्रपाठक में सोमविषयक ऋचाओं का संग्रह होने से 'पवमानपर्व' तथा षष्ठ प्रपाठक को 'अरण्यपर्व' की संज्ञा दी गयी है। इनमें प्रथम से पञ्चम प्रपाठक तक की ऋचाएँ ग्रामगान कही जाती हैं किन्तु षष्ठ प्रपाठक की ऋचायें अरण्य में गायी जाती हैं।

पूर्वार्चिक के अन्त में परिशिष्ट रूप में 'महानाम्नि' नामक ऋचायें (10) दी गयी हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक की मन्त्र संख्या 650 है।

उत्तरार्चिक का विभाजन दो प्रकार से किया गया है– (1) प्रपाठकक्रमानुसार (2) अध्यायक्रमानुसार। प्रपाठक क्रम से उत्तरार्चिक में नव प्रपाठक हैं। इनमें प्रथम पाँच प्रपाठकों में दो-दो भाग हैं तथा अन्तिम चार प्रपाठकों में तीन-तीन अर्द्ध हैं। अध्यायक्रमानुसार उत्तरार्चिक में 21 अध्याय हैं। प्रति अध्याय खण्डों में विभाजित हैं जिनकी संख्या 119 है। उत्तरार्चिक के समग्र मन्त्रों की संख्या 1225 है।

यहाँ ध्यातव्य है कि पूर्वार्चिक के 267 मन्त्र उत्तरार्चिक में पुनरुक्त है। अतः ऋग्वेद की वस्तुतः 1504 ऋचायें (650+1225 = 1875–267 =1504) ही सामवेद में उद्धृत की गयी हैं। इनमें भी 99 ऋचायें सर्वथा नवीन हैं जो कि ऋग्वेद की शाकल शाखा में अप्राप्त हैं। सम्भवतः इनका संकलन ऋग्वेद की अन्य शाखाओं की संहिताओं से किया गया होगा।

सामवेद का द्वितीय विभाग है– 'गानसंहिता।' इसमें पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में संकलित सामयोनि ऋचाओं पर गेय सामगानों का स्वरलिप्यंकन सहित संकलन है। अतः यह 'गानसंहिता' सामवेद संहिता के स्वरमय स्वरूप को उद्घाटित करती है। 'गानसंहिता' के दो विभाग हैं– पूर्वगान तथा उत्तरगान। गान की दृष्टि से इसके 4 विभाग हैं– (1) ग्रामेयगान, (2) आरण्यगेयगान, (3) ऊहगान, (4) ऊह्यगान। इनमें प्रथम दो का सम्बन्ध पूर्वगान तथा अन्तिम दो का सम्बन्ध उत्तरगान से है।

सामवेद की विभागरूप इन दोनों (आर्चिक तथा गान) संहिताओं के सामवेदत्व के विषय में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों में 'आर्चिक संहिता' को ही सामवेद मानने की परम्परा रही है, किन्तु सायणादि वैदिकभाष्यकारों ने गान संहिता को ही मूल सामवेद संहिता स्वीकार किया है क्योंकि साम का मूल अर्थ है गान, न कि ऋक्। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने दोनों में समन्वय करते हुए निष्कर्ष दिया है–'वस्तुतः परम्परा से दोनों ही संहिताओं का सामवेदत्व विहित है। आर्चिक संहिताओं का सामवेदत्व इस रूप में है कि उनके ऊपर सामगान किया जाता है और गानों का सामवेदत्व तो था ही क्योंकि मूल सामवेदत्व तो गान का ही है।'

2) **सामवेद के ऋषि** – सामवेद के परिप्रेक्ष्य में ऋषियों का तात्पर्य केवल मन्त्र के साक्षात्कर्ता ऋषियों से ही नहीं है, अपितु सामग ऋषियों से भी है। वस्तुतः सामवेद के ऋषियों का निर्धारण करना अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि सामवेद में कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनके दृष्टा तथा गायक एक ही ऋषि हैं। कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिनके दृष्टा तथा गायक पृथक्-पृथक् ऋषि हैं। कुछ के गायक ऋषि अनेक हैं तथा कुछ मन्त्रों के दृष्टा तथा गायक ऋषियों के ज्ञानाभाव में ऋषि विशेष भी परिकल्पित कर लिये गये हैं। हाँ, सामवेद के ऋषियों के सन्दर्भ में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सामवेद की आधारभूत ऋग्वेद की ऋचाओं के जो मन्त्रदृष्टा ऋषि है वही सामवेदीय (सामयोनि) ऋचाओं के भी मन्त्रदृष्टा ऋषि होंगे तथा गानपरम्परा की दृष्टि से जिस साम का गान जिस ऋषि ने किया, वह मन्त्र उसी ऋषि के नाम से ख्याति में आया, जैसे भरद्वाज के द्वारा किया गया सामगान 'भारद्वाज साम' वामदेव के द्वारा गीत साम 'वामदेव्य', कण्व द्वारा गाया गया साम 'काण्वसाम' कहलाया।

3) **सामवेद के देवता** – कात्यायन का कथन है– जो मन्त्रों द्वारा स्तुत्य होता है, वही देवता है। सामवेद संहिता में देवता विचार के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं– (1) आर्चिक संहिता को 'दैवत संहिता' भी कहा जाता है क्योंकि इसमें देवताओं की दृष्टि से सामयोनि ऋचाओं का अध्यायों (प्रपाठकों) में संग्रह किया गया है। पूर्वार्चिक के प्रारम्भिक पाँच अध्यायगत तीन पर्वों (आग्नेय, ऐन्द्र तथा पवमान काण्डों) के देवता क्रमशः अग्नि, इन्द्र सोम हैं। षष्ठ अध्याय (चतुर्थपर्व अरण्य काण्ड) के 55 मन्त्र सूर्य, अग्नि, इन्द्र, सोमपुरुषादि 15 देवताओं से सम्बद्ध हैं। महानाम्न्यार्चिक के दस मन्त्रों के देवता प्रजापति हैं।

उत्तरार्चिक में पन्द्रहवें तथा इक्कीसवें (दो) अध्यायों के देवता क्रमशः अग्नि तथा इन्द्र हैं। शेष अध्यायों में विविधदेवताविषयक सूक्त हैं।

गान संहिता में आर्चिक संहिता के अन्तर्गत संकलित सामयोनि ऋचाओं के ही गान का संकलन है अतः गान के भी वही देवता हुए, जो सामयोनि ऋचाओं के हैं। फिर भी पाँच अन्य दृष्टियों से भी गानसंहिता में संकलित सामगानों के देवता का निर्णय किया जाता है।

1) सवन की दृष्टि से देवतानिर्णय– यथा प्रातः माध्यन्दिन तथा तृतीयसवन के देवता क्रमशः वसुगण रुद्रगण तथा आदित्यगण हैं।

2) सामवैविध्य की दृष्टि से अधिष्ठातृदेवता का निर्णय यथा– त्रिवृत्तसोम ब्राह्मण से सम्बद्ध है। अग्नि ब्राह्मण है अतः त्रिवृत्त सोम का देवता अग्नि है।

3) सामभक्तियों की दृष्टि से देवतानिर्णय– साम की मुख्यतः 5 भक्तियाँ हैं। इनमें प्रस्ताव, उद्गीथ तथा प्रतिहार भक्तियों के देवता क्रमशः प्राण, आदित्य तथा अन्न है। निधन नामक भक्ति के अग्नि, इन्द्र, प्रजापति आदि 10 देवता हैं।

4) छन्द की दृष्टि से देवतानिर्णय– दैवतब्राह्मण में गायत्री, उष्णिक् आदि छन्दों की दृष्टि से सामयोनि ऋचाओं के अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुणादि कुल 12 देवता है।

5) स्वर की दृष्टि से देवतानिर्णय– सामगान में प्रयुक्त सात स्वरों (क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य) के देवता क्रमशः देवतात्रय (प्रजापति, विश्वेदेव, ब्रह्मा) आदित्य साध्यअग्नि, वायु, सोम तथा मित्रावरुण है।

4) **सामवेद के ऋत्विज्** – सामवेद के ऋत्विज् को उद्गाता कहते हैं। इसके तीन सहायक होते थे– प्रस्तोता, प्रतिहर्ता तथा सुब्रह्मण्य। इन चारों ऋत्विजों के समूह को 'उद्गातृमण्डल' या 'उद्गातृवर्ग' कहा जाता था। इनका कार्य यज्ञानुष्ठानादि मांगलिक कृत्यों में सामगान करना होता था। उद्गाता नामक ऋत्विज् से सम्बद्ध होने के कारण सामवेद को 'उद्गातृवेद' भी कहते हैं।

5) **सामवेद का वर्ण्य-विषय** – चतुर्वेदों में सामवेद संगीत प्रधान वेद है।इसका मूल प्रतिपाद्य विषय है– विविध देवताओं से सम्बद्ध यज्ञानुष्ठानोपयोगी सामयोनि ऋचाओं का संग्रह तथा उनकी गान-पद्धतियों का निरूपण। सामवेद की आर्चिक संहिता में पूर्वार्चिक के अन्तर्गत आग्नेय पर्व में अग्निसम्बद्ध, ऐन्द्रपर्व में इन्द्रविषयक, पवमान पर्व में सोम से सम्बद्ध तथा आरण्यक पर्व और महानाम्नी ऋचाओं में विविध देवताओं से सम्बद्ध एकर्च सामयोनि ऋचाओं का संकलन है।

उत्तरार्चिक में प्रगाथ (द्वयर्च) तथा तृचादि सूक्त पठित हैं। इनमें अधिकतर की पहली (योनिभूत) ऋचायें पूर्वार्चिक में पठित हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में मूलभूत अन्तर यह है कि पूर्वार्चिक में नानाविध सामों की योनिभूत ऋचायें पठित हैं जबकि उत्तरार्चिक में प्रगाथ एवं तृचादि सूक्त संकलित हैं।

'गानसंहिता' में आर्चिक संहिता के अन्तर्गत संकलित सामयोनि ऋचाओं पर गाये जाने वाले सामगानों का संकलन किया गया है अर्थात् इसमें साम के स्वरमय स्वरूप (स्वरलिपि सहित गान) का संकलन हुआ है। गानसंहिता में गान की दृष्टि से साम संहिता के चार विभाग हैं– (1) ग्रामगेय गान (2) आरण्यक गान (3) ऊहगान (4) ऊह्यगान। इनमें प्रथम दो (ग्रामगेय गान तथा आरण्यकगान) का सम्बन्ध पूर्वार्चिक में संग्रहीत सामयोनि ऋचाओं के गान से है तथा अन्तिम दो (ऊहगान तथा ऊह्यगान) का सम्बन्ध उत्तरार्चिक में संग्रहीत प्रगाथ तृचादि के गान से है। ऊहगान में यज्ञकर्म के आधार पर सात विभाग हैं– दशरात्रपर्व, संवत्सरपर्व, एकाहपर्व, अहीनपर्व, सत्रपर्व, प्रायश्चितपर्व तथा क्षुद्रपर्व। उपर्युक्त गानप्रकारों में ग्रामगेयगान तथा आरण्यकगान 'प्रकृति (योनि) गान' है जबकि ऊहगान तथा ऊह्यगान क्रमशः उनकी विकृतियाँ हैं क्योंकि ग्रामगेय में प्रयुक्त स्वररागादि का आश्रय लेकर ही ऊहगान का निर्माण होता है तथा अरण्यगान के स्वर रागादि के आधार पर ही ऊह्यगान की रचना की गयी है।

सामवेदियों की मान्यता है कि ग्रामगेयगान ग्राम में समाज में गाने योग्य होते हैं परन्तु 'अरण्यगान' केवल अरण्य में ही गाने योग्य होते हैं। ग्राम में गाने से उनसे अनर्थ की सम्भावना रहती है। अरण्य के पवित्र वातावरण में ही उनका उचित गायन सम्भव है तथा उनसे उचित प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। 'ऊह' का अर्थ है ऊहन। किसी अवसरविशेष पर मन्त्रों का सामयिक परिवर्तन। इस प्रकार सोमयाग के अवसर पर प्रयोजनीय सामों को 'ऊहगान' कहते हैं। 'ऊह्यगान' के भी अरण्यगान के समान रहस्यात्मक होने से उनका सर्वसाधारण के सामने गान निषिद्ध है।

6) **सामवेद की शाखायें** – सामवेद की शाखाओं के सन्दर्भ में प्रसिद्धि है–'**सहस्रवर्त्मा सामवेदः** 'अर्थात् सामवेद की सहस्त्र शाखायें थीं। पौराणिकाख्यानानुसार महर्षि वेदव्यास ने सामवेद की शिक्षा जैमिनि को दी तदुपरान्त जैमिनी से उसके पुत्र सुकर्मा को तथा सुकर्मा से उसके दो शिष्यों– हिरण्यनाभ तथा पौष्यञ्जि को प्राप्त हुई, जिनके द्वारा सामवेद की क्रमशः प्राच्य और उदीच्य धारायें उद्‌भावित हुईं। हिरण्यनाभ का शिष्य कृत था, जिससे 24 अनुयायी शिष्यों ने सामवेद की शिक्षा ग्रहण की–

> **चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।**
> **स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः।।**

इस प्रकार सामवेद के शिष्य-प्रशिष्यों में संक्रान्त होने से विविध शाखाओं का आविर्भाव हुआ। प्राचीन ग्रन्थों सामतर्पण तथा चरणव्यूह में सामवेद की 13 शाखाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनके नाम दोनों ग्रन्थों में भिन्न हैं।

सम्प्रति सामवेद की तीन शाखायें ही उपलब्ध हैं– कौथुमीया, राणायनीया, जैमिनीया। इनका संक्षिप्त विवरण क्रमशः द्रष्टव्य है–

क) **कौथुम शाखा** – यह सामवेद की सर्वाधिक लोकप्रिय शाखा है। इसकी ताण्ड्य नामक शाखा भी उपलब्ध है। 25 काण्डों में निबद्ध ताण्ड्यब्राह्मण इसी शाखा का है। छान्दोग्योपनिषद् भी इसी शाखा से सम्बद्ध है। यह शाखा गुजरात के ब्राह्मणों विशेषतः नागरब्राह्मणों में प्रचलित है।

ख) **राणायनीय शाखा** – यह शाखा कौथुमशाखा से अभिन्न है। दोनों शाखायें मन्त्रगणना की दृष्टि से एक ही है। केवल कुछ स्थलों पर उच्चारण सम्बन्धी भेद दृष्टिगत होता है।

ग) **जैमिनीय शाखा** – सामवेद की यह शाखा समग्र रूप में (संहिता, ब्राह्मण, श्रौत तथा गृह्यसूत्रों सहित) उपलब्ध होती है। इसके मन्त्रों की संख्या 1687 है जो कि कौथुम शाखा से 182 मन्त्र कम है जबकि सामगान की दृष्टि से यह संख्या कौथुम शाखा से सहस्राधिक है। जैमिनी तथा कौथुम शाखायें पाठ की दृष्टि से अधिक भिन्न नहीं हैं, किन्तु उनकी गान पद्धति सर्वथा भिन्न है। तवलकार शाखा इसी की अवान्तर शाखा है, जिससे केनोपनिषद् का सम्बन्ध है। यह शाखा नागरी लिपि में लाहौर से प्रकाशित है।

7) **सामगानपद्धति** – 'साम' रूढ शब्द है जिसका अर्थ है गान या गीति। जैसा कि जैमिनी का वचन है–**गीतिषु समाख्या**। 'साम' गानसामान्य का नाम है तथा रथन्तर बृहत् आदि गानविशेष है। ये साम गायत्र्यादि सभी छन्दों में गाये जाते हैं। किस ऋचा पर कौन से तथा कितने साम होंगे? इनका निश्चय वैदिकों की परम्परा से होता आया है।अतः प्रत्येक मन्त्र का साम नियत है।

गान के चार प्रकारों (ग्रामगेयगान, आरण्यकगान, ऊह तथा ऊह्यगान) में से ग्रामगेय गान पूर्वार्चिक के प्रथम पाँच अध्यायों के मन्त्रों पर, अरण्यगान आरण्यकपर्व में निर्दिष्ट मन्त्रों पर तथा ऊह और ऊह्यगान उत्तरार्चिक में उल्लिखित मन्त्रों पर मुख्यतः होता है। इनमें ग्रामगेय गान में प्रयुक्त स्वर रागादि का आश्रय लेकर ऊहगान का निर्माण होता है, जो कि समाज में गेय होते हैं जबकि अरण्यगान के स्वर रागादि के आधार पर ऊह्यगान निर्मित होता है, जो कि रहस्यात्मक होने के कारण अरण्य के पवित्र वातावरण में ही गेय हैं।

नारदीय शिक्षा के अनुसार साम के स्वरमण्डल में सम्मिलित है–7 स्वर, 3 ग्राम, 21 मूर्च्छनायें तथा 49 तानें।

सामगान के स्वर – साम का अनुप्राणक तत्त्व स्वर हैं। अतः सस्वर ही सामगान विहित है–**'स्वरेण सम्पाद्य उद्गायते'** (जै.ब्रा. 1/112)। सामान्यतः वैदिक संहिताओं में उच्चारण की त्रैस्वर्यपद्धति (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) का अनुसरण किया जाता है किन्तु सामसंहिता सप्त स्वरों पर आश्रित है। सामवेद के सप्तस्वरों की तुलना वेणुस्वर से इस प्रकार है–

	साम	वेणु
1.	प्रथम	मध्यम (म)
2.	द्वितीय	गान्धार (ग)
3.	तृतीय	ऋषभ (रे)
4.	चतुर्थ	षड्ज (नि)

5.	पञ्चम	निषाद (नि)
6.	षष्ठ	धैवत (ध)
7.	सप्तम	पञ्चम (प)

सामगानों में ये ही 7 तक के अंक उनके स्वरों के स्वरूप को सूचित करने के लिये लिखे जाते हैं। सामविधान ब्राह्मण में प्रथम बार साम के सप्त स्वरों का निर्देश प्राप्त होता है– क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार्य। उव्वट ने इन क्रुष्टादिस्वरों को 'सामस्वर' तथा षड्जादि स्वरों को 'गान्धर्व स्वर' कहा है। याज्ञवल्क्य का मत है कि साम के इन सप्त स्वरों में से निषाद तथा गान्धार वाले स्वरों का उदात्त स्वर में, ऋषभ धैवत स्वरों का अनुदात्त में तथा शेष (षड्ज, मध्यम और पञ्चम) का स्वरित स्वर में अन्तर्भाव हो जाता है।

सामगानों पर तो स्वरों को सूचित करने के लिये 1-7 तक के अंकों को चिह्नित किया जाता है किन्तु सामयोनि ऋचाओं के ऊपर दिये गये अंकों की व्यवस्था दूसरे प्रकार की होती है।

सामविकार – सामयोनि मन्त्रों को सामगानों में ढालने पर अनेक संगीतानुकूल शाब्दिक परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें 'सामविकार' कहते हैं अष्टसामविकार (सामविकार) होते हैं– (1) विकार (2) विश्लेष (3) विकर्षण (4) अभ्यास (5) विराम (6) स्तोभ (7) आगम (8) लोप। ये अष्टविकृतियाँ वस्तुतः सामगान के अलंकरण हैं।

स्तोत्र/स्तोम/विष्टुतियाँ/स्तोभ – सामवेद में स्तोत्र होते हैं–'**प्रणीतमन्त्र साध्या स्तुतिः स्तोत्रम्।**' स्तोम भी स्तुति का ही एक प्रकारान्तर है। स्तोमों का प्रयोग यागों में विहित था। स्तोम संख्या में 9 हैं– (1) त्रिवृत्त (2) पञ्चदश (3) सप्तदश (4) एकविंश (5) त्रिणव (6) त्रयस्त्रिंश (7) चतुर्विंश (8) चतुश्चत्वारिंश (9) अष्टचत्वारिंश। ये स्तोम प्रायः तृच् होते हैं। इन तृचों को तीन पर्याय में गाने का नियम है। प्रत्येक पर्याय में तृचों पर साम के गान की आवृत्ति का नियम है। इस प्रकार तृतीय पर्याय में स्तोम का स्वरूप निष्पन्न हो जाता है। इस आवृत्तिजन्य गान के प्रकार को 'विष्टुति' (विशेष स्तुति) कहते हैं। इन 9 स्तोमों की समग्र 28 विष्टुतियाँ हैं।

गायन में पूर्ति के लिये कभी-कभी निरर्थक पद भी जोड़ दिये जाते हैं, जैसे– औ हौ वा आदि। इन्हें 'स्तोभ' कहते हैं।

सामभक्ति – सामगान की पद्धति अत्यन्त कठिन है। सामगान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है– सामभक्ति। सामगान में प्रत्येक गान को ऋत्विजों (उद्गाता मण्डल) की दृष्टि से अनेक अवयवों में विभक्त कर लिया जाता है। जिनके गायन का उत्तरदायित्व उद्गातृ मण्डल के पृथक्-पृथक् ऋत्विज् पर होता है। उद्गातृ वर्ग के विभिन्न ऋत्विजों द्वारा गान किये जाने वाले गान के अवयवों को ही 'सामभक्ति' कहते हैं।

सामगान की पाँच भक्तियाँ हैं– '**प्रस्तावोद्गीथ प्रतिहारोपद्रवनिधनादि भक्तयः (पञ्चविध सूत्र)**' (1) प्रस्ताव (2) उद्गीथ (3) प्रतिहार (4) उपद्रव (5) निधन। इनमें 'प्रस्ताव' का गान 'प्रस्तोता' ऋत्विज्, उद्गीथ का गान 'उद्गाता', 'प्रतिहार' का प्रतिहर्ता नामक ऋत्विज्, 'उपद्रव' का गान 'उद्गाता' तथा 'निधन' का गान 'प्रस्तोता', 'उद्गाता' तथा 'प्रतिहर्ता' मिलकर करते हैं।

इन पञ्चविध भक्तियों में 'हिंकार' तथा 'ओंकार' को सम्मिलित कर देने पर सप्तविध सामभक्तियाँ कही गयी हैं।

1.4.4 अथर्ववेद संहिता

चतुर्वेदों में सर्वाधिक विलक्षण वेद है– अथर्ववेद संहिता। सायण का कथन है– **'व्याख्याय वेदत्रितयमामुष्मिकफलप्रदम्। ऐहाकामुष्मिकफलं चतुर्थं व्याचिकीर्षति।'** (अथर्ववेद भा. भू.) अर्थात् ऋग्वेदादि तीनों वेद केवल आमुष्मिक फल प्रदान करने वाले हैं क्योंकि इन वेदों के मन्त्रों में स्वर्गलोक की प्राप्ति आदि परलोक सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन किया गया है परन्तु अथर्ववेद ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों प्रकार के फलों की सिद्धि करता है। लोक में जीवन को सुखमय तथा दुःख विरहित बनाने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनकी सिद्धि हेतु विविध अनुष्ठानों का विधान इसी वेद में किया गया है। इस प्रकार यज्ञ के पूर्ण संस्कार के लिये अथर्ववेद नितान्त उपादेय है।

अथर्ववेद की महिमा को अथर्व परिशिष्ट में भी वर्णित किया गया है। तदनुसार– 'जिस राजा के जनपद में अथर्ववेद का ज्ञाता निवास करता है वह राष्ट्र उपद्रव हीन होकर वृद्धि को प्राप्त करता है।'

'अथर्व' शब्द कौटिल्यार्थ हिंसार्थक और गमनार्थक 'थर्व' धातु से निष्पन्न है। यास्क के अनुसार 'अथर्व' शब्द की निरुक्ति है–**'थर्वतिः = चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः अर्थात् थर्वणं = थर्वो गमनं तत् अस्ति एषाम् इति थर्वन्तः। न थर्वन्तः इति अथर्ववन्तः, त एव अथर्वाणः। स्थिरप्रकृतयो हि ते भवन्तीत्यर्थः।'** (निरु. 11/3/23) अर्थात् स्थिरचित्तवृत्ति वाले अहिंसक व्यक्ति ही अथर्व कहलाते हैं।'अथर्व' शब्द का यह निर्वचन अथर्ववेद के आध्यात्मिक पक्ष को अभिव्यक्त करता है। अथर्ववेद में योग के प्रतिपादक अनेक अंश इस अर्थ की पुष्टि करते हैं।

सामान्यतः 'अथर्वा' नामक ऋषि के द्वारा इस वेद के सर्वाधिक मन्त्रों के दृष्ट होने के कारण इस वेद को 'अथर्ववेद' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के अन्य अभिधान भी हैं– 'अंगिरावेद', 'अथर्वांगिरसवेद', 'क्षत्रवेद' तथा 'ब्रह्मवेद'। इनमें अंगिरा नाम के ऋषि द्वारा अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों के दृष्ट होने अथवा दुष्टविनाशक 'अंगिरा' नामक अग्नि से सम्बद्ध अभिचारिक मन्त्रों से युक्त होने से इस वेद को 'अंगिरावेद' कहते हैं अथवा अथर्वा ऋषि के द्वारा दृष्ट शान्तिपौष्टिक भैषज्य मन्त्रों तथा अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट अभिचारिक मन्त्रों का संकलन होने से इसे 'अथर्वांगिरसवेद' कहा जाता है। क्षत्रिय कुलोत्पन्न राजाओं से सम्बद्ध विविध राजनैतिक दण्डनीतिविषयक सामग्रियों का संकलन होने से अथर्ववेद का एक नाम 'क्षत्रवेद' भी है इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का प्रतिपादक होने अथवा ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के कर्म का प्रतिपादक होने से इसे 'ब्रह्मवेद' के नाम से भी अभिहित किया गया।

1) **अथर्ववेद का विषय विभाग** – अथर्ववेद 20 काण्डों में विभक्त है। इसमें 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्रों का संकलन है। इन मन्त्रों का संकलन एक विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। आरम्भिक सात काण्डों में छोटे-छोटे सूक्त हैं। प्रथम काण्ड से पञ्चम काण्ड तक प्रतिसूक्त में नियम से क्रमशः 4, 5, 6, 7 तथा 8 मन्त्र संकलित हैं। षष्ठ काण्ड में 142 सूक्त हैं जिनमें प्रतिसूक्त में न्यूनतम तीन मंत्र हैं। सप्तम काण्ड के 118 सूक्तों में से अधिकतर सूक्तों में एक या दो ही मन्त्र हैं। अष्टम से द्वादश काण्डों में बड़े-बड़े सूक्त संग्रहीत हैं जो भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं। द्वादश काण्ड के आरम्भ में पृथिवी सूक्त है जिसके 63 मन्त्रों में अनेक राजनीतिक तथा भौगोलिक सिद्धान्तों का भव्य चित्रण है। त्रयोदश से अष्टादश काण्ड तक विषय की एकता दृष्टिगत होती है। 13वाँ

काण्ड आध्यात्मविषयक है। चौदहवें काण्ड में दो दीर्घ सूक्तों (139 मन्त्रों) में विवाह सम्बन्धी वर्णन है। 15वाँ काण्ड व्रात्यकाण्ड है, जिसमें व्रात्यों के यज्ञ सम्पादन का आध्यात्मिक वर्णन है। 16वें काण्ड में दुःस्वप्न नाशक मन्त्रों (103) का सुन्दर संग्रह है। 17वें काण्ड में एक सूक्त है जिसमें अभ्युदय की कामना की गयी है। 18वाँ काण्ड श्राद्धकाण्ड, 19वें काण्ड में भैषज्य राष्ट्रावृद्धि तथा आध्यात्मिक मन्त्र तथा अन्तिम 20वें काण्ड में विशेषतः सोमयाग विषयक 958 मन्त्र संकलित हैं।

अथर्ववेद का एक पञ्चमांश (1200 मंत्र) ऋग्वेद का निजी अंश है। ये मंत्र ऋग्वेद के प्रथम अष्टम तथा दशम मण्डलों से उद्धृत हैं।

2) **अथर्ववेद के ऋषि** – गोपथ ब्राह्मण के अनुसार अथर्वा ऋषि ने बीस ऋषियों के द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संहिता के रूप में संकलन करके प्रवचन किया था। वही संहिता मूलतः अथर्ववेद संहिता है। सायण का मत है जिसमें अथर्वा तथा अंगिरस ऋषियों से उत्पन्न 20 ऋषियों के मन्त्रों का संग्रह है वह अथर्व संहिता है अर्थात् बीस ऋषियों का सम्बन्ध अथर्ववेद से है।

   इसके अतिरिक्त अथर्ववेद संहिता के लगभग 1200 मंत्र साक्षात् ऋग्वेद से उद्धृत हैं। अतः अथर्वा, अंगिरस भृगु आदि ऋषियों के अतिरिक्त भरद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्वादि ऋग्वैदिक ऋषियों तथा उनके वंशज ऋषि भी अथर्ववेद से सम्बद्ध हो जाते हैं।

3) **अथर्ववेद के ऋत्विज्** – अथर्ववेद का ऋत्विज् 'ब्रह्मा' कहलाता था। इसके भी तीन सहायक थे– ब्राह्मणच्छंसी, अग्नीध्र, तथा पोता। इनकी संयुक्त संज्ञा 'ब्रह्ममण्डल' थी। 'ब्रह्मा' ही सम्पूर्ण यज्ञ का अध्यक्ष होता था। तीनों वेदों के ऋत्विग्गणों (होतृगण, अध्वर्युगण, उद्गातृगण) के कार्यों के निरीक्षण का दायित्व इसी (ब्रह्मा) पर होता था। 'ब्रह्मा' चारों वेदों का ज्ञाता होता था। यज्ञ के अध्यक्ष के रूप में यज्ञ की रक्षा का मुख्य दायित्व इसी पर था। अतः यज्ञरक्षासम्बन्धी कर्म शान्तिक-पौष्टिक-भैषज्यादिकर्मों से सम्बन्धित मन्त्रों का संकलन 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विज् के कार्यों की सिद्धि के लिये अथर्ववेद में किया गया इसलिये इस वेद का एक नाम 'ब्रह्मवेद' भी है।

4) **अथर्ववेद का वर्ण्य-विषय** – अथर्ववेद की विषय-वस्तु ऋग्वेदादि से नितान्त विलक्षण हैं। प्राचीन मानव के समाज में ऐसी विविध क्रियायें, अनुष्ठान तथा विश्वास थे, जिनका विशद विवेचन अथर्ववेद के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। शत्रुओं पर विजय प्राप्ति, क्लेशकर दीर्घ रोगों के निवारण, नवजात सन्तति तथा प्रसूता स्त्री को सन्तप्त करने वाले भूत-प्रेतों के विनाश सम्बन्धी विविध अभिचारों के वर्णन की दृष्टि से अथर्ववेद विश्वकोश है। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से अथर्ववेद में वर्णित विषयों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है– (1) आध्यात्मिक (2) आधिभौतिक (3) आधिदैविक। आध्यात्मप्रकरण में ब्रह्म परमात्मा आश्रमादि का वर्णन आधिभौतिक प्रकरण में राज्य-शासन शर्त्वादि का वर्णन तथा आधिदैविक प्रकरण में विविध देवताओं, यज्ञों तथा कालादि से सम्बद्ध प्रचुर सामग्री विद्यमान है। अथर्ववेद में तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना तथा भैजष्यविद्या का भी प्राचुर्य है। इससे सम्बद्ध कतिपय सूक्त यहाँ द्रष्टव्य हैं–

1) **भैजषज्य सूक्त** – इस सूक्त में बलास-यक्ष्मा-कास-दन्तपीडादि विविध रोगों, सर्पविषादि के लक्षण, विकार तथा इन सबकी औषधियों के विषय में विविध लताओं, गुल्म तथा वनस्पतियों का वर्णन है।

2) **आयुष्य सूक्त** – इसमें आयुवृद्धि (दीर्घायु) हेतु तथा सौ प्रकार की मृत्यु से बचने और विविध रोगों से रक्षा के निमित्त मन्त्रों का संग्रह है। बालकों के मुण्डन, गोदान, उपनयन, विवाहादि मांगलिकावसरों पर दीर्घायु प्राप्ति हेतु इन मन्त्रों का विशेष प्रयोग होता है।

3) **पौष्टिक कर्म** – इसके अन्तर्गत गृहनिर्माण, सीरकर्षण, बीजवपन, अन्नोपादानपुष्टि, विदेश गमन, व्यापारादि से सम्बद्ध विविध आशीर्वादात्मक प्रार्थनायें हैं।

4) **प्रायश्चित्त कर्म** – अथर्ववेद में ज्ञाताज्ञात रूप से धर्मविरुद्धाचरण के प्रायश्चित्त स्वरूप उनसे मुक्ति पाने के लिये विविध विधानों (मन्त्रों) तथा अशुभस्वप्न, अशुभ नक्षत्र में जन्मादि अपशकुनों को दूर करने के निमित्त अनेक उपायों का वर्णन है।

5) **स्त्रीकर्म** – अथर्ववेद में स्त्रीविषयकाभिचार से सम्बद्ध भी अनेक सूक्त उपलब्ध होते हैं। इसमें पुत्रोत्पादन, नवजात शिशु के रक्षण से सम्बद्ध अभिचारों के अतिरिक्त मारण-मोहन-उच्चाटन तथा वशीकरण मन्त्रों का भी बाहुल्य है।

6) **राजकर्म** – अथर्ववेद के अन्तर्गत राजाओं से सम्बद्ध अनेक सूक्त हैं। इनमें शत्रुओं के विनाश हेतु अभिचार, युद्धोपयोगी साधनों तथा राजा के संरक्षण सम्बन्धी विविध मन्त्रों का संकलन है।

7) **ब्राह्मण्यानि** – इसमें परब्रह्म परमात्मा के भव्य स्वरूप तथा कार्य वर्णित हैं। परब्रह्म यहाँ काल के रूप में वर्णित है। इसमें ब्राह्मण के हित में प्रार्थनायें तथा अभिशापों का भी वर्णन है।

8) **भूमिसूक्त** – इस सूक्त में पृथिवी को माता के रूप में कल्पित करते हुए मातृभूमि के प्रति अत्यन्त भावुक हृदयोद्गार का वर्णन किया गया है तथा पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को उसका पुत्र बताया है– **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'** (अथर्व. 12/1/13)

9) **व्रात्य** – अथर्ववेद की शौनक शाखा के पन्द्रहवें अध्याय को 'व्रात्यकाण्ड' कहा जाता है। 'व्रात्य' का लाक्षणिक अर्थ है– ब्रह्म। अतः इसमें 'ब्रह्म' के स्वरूप तथा उससे उत्पन्न सृष्टि का क्रमिक वर्णन है।

5) **अथर्ववेद की शाखायें** – पातञ्जल महाभाष्य में **'नवधाऽथर्वणो वेदः'** कहकर अथर्ववेद की 9 शाखाओं का निर्देश किया गया है। 'चरणव्यूह', 'प्रपञ्चहृदय' तथा सायणकृत 'अथर्ववेद भाष्य भूमिका' में इसका समर्थन किया गया है। अथर्ववेद की ये 9 शाखायें हैं– पैप्पलाद, स्तौद, मोद, शौनकीया, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श, चारण तथा वैद्य किन्तु सम्प्रति इन 9 शाखाओं में मात्र दो शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) शौनकीया शाखा (2) पैप्पलाद शाखा।

क) **शौनकीया शाखा** – सम्प्रति यह शाखा ही अथर्ववेद की प्रतिनिधि शाखा है। इसमें 20 काण्ड, 736 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं। इसके प्रवचनकर्ता ऋषि शौनक हैं। इसके अन्तिम काण्ड में अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद से लिये गये हैं।

ख) **पैप्पलाद शाखा** – इसके प्रवचनकर्ता महर्षि पिप्लाद हैं। इस शाखा का उल्लेख उपनिषदों, पुराणों तथा महाभारतादि में मिलता है। इसमें भी 20 काण्ड, 923 सूक्त तथा 8000 से कुछ कम मन्त्र हैं। इसके 20वें काण्ड में अधिकांश ऐसे मन्त्र हैं जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। प्राचीनता तथा महत्ता की दृष्टि से पैप्पलाद संहिता का ऋग्वेद के बाद दूसरा स्थान है। इसकी प्रसिद्धि 'काश्मीरियन अथर्ववेद' के रूप में भी रही है।

6) **अथर्ववेद का वेदत्व** – वेदमन्त्रों के त्रैविध्य (पद्य, गद्य तथा गीति) के आधार पर ऋक्, यजुष् तथा साम संहिता को संयुक्त रूप से वेदत्रयी कहा गया किन्तु वेदमन्त्रों के संकलन तथा कर्म प्रतिपादन की दृष्टि से वैदिक संहितायें चतुर्विध हैं– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता। इस प्रकार 'वेदत्रयी' के साथ-साथ 'वेदचतुष्टयी' की स्थापना हुई।

वेदांग ज्योतिष के इस वचन **'वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः'** (वेदांग ज्यो. 3) के आधार पर वेदों की प्रवृत्ति यज्ञ के लिये हुई है। यज्ञानुष्ठान में यज्ञकर्म के सम्पादन की दृष्टि से मन्त्रों का चातुर्विध्य कल्पित किया गया। यज्ञकर्म में ऋग्वेद का ऋत्विज् 'होता' ऋग्वेद के मन्त्रों से देवताओं का आह्वान करता है। यजुर्वेद का ऋत्विज् 'अध्वर्यु' आवाहित देवताओं को यजुष् मन्त्रों से विधि-विधानपूर्वक आहुति समर्पित करता है। सामवेद का ऋत्विज् 'उद्गाता' उन देवताओं की प्रसन्नता के लिये सस्वर सामगान करता है तथा अथर्ववेद का ऋत्विज् 'ब्रह्मा' यज्ञ में उत्पन्न त्रुटियों को मार्जन हेतु प्रायश्चित्त का विधान तथा यज्ञ की विविध विघ्नों से रक्षा करता है। इस प्रकार ये सभी किसी भी यज्ञानुष्ठान के पूरक हैं इसलिये ऋत्विजों के कर्तव्य-विभाग की दृष्टि से वैदिक मन्त्रों का चार संहिताओं में संकलन किया गया।

अथर्ववेद के चतुर्थ वेद संहिता के रूप में कल्पित करने के मूल में एक कारण यह भी है कि ऋग्वेदादि तीनों वेद आमुष्मिक फल वाले हैं, जबकि अथर्ववेद में ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों प्रकार के मन्त्रों का संकलन है अर्थात् अभिचार प्रायश्चित्त भैषज्यादि से सम्बद्ध जो विषय ऋग्वेद आदि तीनों वेदों में अत्यल्प थे या संकलित नहीं थे। जनसामान्योपयोगी उन-उन विषयों को संकलित करने की दृष्टि से चतुर्थवेद के रूप में 'अथर्ववेद संहिता' को कल्पित किया गया। इस प्रकार 'वेदत्रयी' कहा जाये या 'वेदचतुष्टयी', वेद के सन्दर्भ में दोनों संज्ञायें सार्थक हैं।

1.5 वैदिक संहिताओं के भाष्यकार

वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता) पर अनेक भाष्यकारों ने अपने भाष्यों का प्रणयन किया। इनका संक्षिप्त परिचय द्रष्टव्य है–

1) **ऋग्वेद के भाष्यकार** –

क) **माधवभट्ट** – ये ऋग्वेद संहिता के प्राचीनतम भाष्यकारों में अग्रगण्य है। इनके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। इनके द्वारा ऋग्वेद पर रचित भाष्य का

भी कुछ अंश (एक अष्टक ऋक्परिमित) ही उपलब्ध होता है। वेंकटमाधव (12वीं शता.) स्कन्दस्वामी (छठीं शताब्दी) तथा सायण ने इनके भाष्य को अनेकत्र उद्धृत किया है, जिससे इनका समय छठीं शताब्दी से भी पूर्व सिद्ध होता है।

ख) **स्कन्दस्वामी** – ये ऋग्वेद के ऐसे प्रथम भाष्यकार हैं जिनका सम्पूर्ण भाष्य उपलब्ध है। इनका स्थितिकाल बाणभट्ट के समकालीन 682वि. माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी इनके शिष्य थे। ऋग्वेद पर रचित इनका भाष्य अत्यन्त विशद तथा वैदुष्यपूर्ण है।

ग) **नारायण तथा उद्गीथ** – इन दोनों भाष्यकारों का समय सप्तम शताब्दी माना जाता है। इन दोनों ने ही ऋग्वेद पर भाष्य करने में स्कन्दस्वामी की सहायता की थी। इनमें नारायण का उल्लेख माधव ने अपने भाष्य में किया है तथा उद्गीथ ने ऋग्वेद के अन्तिम भाग पर भाष्य किया था।

घ) **वेंकटमाधव** – ये दक्षिणापथ के चोलदेश (आंध्रप्रदेश) के निवासी थे। इन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता पर भाष्य लिखा था। इनके भाष्य का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें केवल पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करके मन्त्र के अर्थ को स्पष्ट किया गया है जिससे अर्थबोध में सुगमता होती है। इनका समय 1200 शताब्दी विक्रम संवत् है।

ङ) **धानुष्कयज्वा** – ये वैष्णवाचार्य 'त्रिवेदीभाष्यकार' या 'त्रयीनिष्ठवृद्ध' के नाम से भी जाने जाते हैं। जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने तीनो वेदों पर भाष्य रचा था, किन्तु न वे उपलब्ध हैं न ही उनके विषय में कोई सूचना प्राप्त होती है। इनका समय विक्रम संवत् 1300 से पूर्व माना जाता है।

च) **आनन्दतीर्थ** – 'माधव' नाम से प्रसिद्ध आनन्दतीर्थ के द्वारा ऋग्वेद पर छन्दोबद्ध भाष्य की रचना की गयी थी। यह भाष्य ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के केवल कुछ मन्त्रों पर रचित है। ये 'द्वैतवाद' के प्रवर्तक थे। इनका समय 1255-1335 ई. तक माना जाता है।

छ) **आत्मानन्द** – चतुर्दश शताब्दी के समकाल इन्होंने ऋग्वेद के 'अस्यवामीय' सूक्त पर अपना भाष्य लिखा था।

ज) **सायणाचार्य** – वैदिकभाष्यकारों में सायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का कथन है– **'वेदानां पुण्यप्रकर्षः एव मूर्तो भूत्वा सायणात्मना प्रकटीभूत' इति**। चारों वेदों पर इनके भाष्यों में सायण के भाष्य को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सायण विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक्का तथा महाराज हरिहर के आमात्य तथा सेनानी थे। सायण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता 'माधव' के कहने पर वेदों पर भाष्य की रचना की थी इसीलिये इनके भाष्य को 'माधवीय भाष्य' भी कहा जाता है। इनका समय 14वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

2) यजुर्वेद के भाष्यकार –

यजुर्वेद संहिता पर भाष्य रचने वाले अनेक भाष्यकार हुए। जिन्होंने कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद पर अपने-अपने भाष्य का प्रणयन किया–

कृष्ण यजुर्वेद के भाष्यकार – कृष्ण यजुर्वेद की केवल तैत्तिरीय संहिता पर भाष्यकारों ने भाष्य का प्रणयन किया इन भाष्यकारों में कुण्डिन, भवस्वामी, गुहदेव तथा

आचार्य क्षुर के द्वारा रचित भाष्य उपलब्ध नहीं होते, इनका संकेत विविध ग्रन्थों से प्राप्त होता है। कृष्ण यजुर्वेद के उपलब्ध भाष्यकारों में अग्रणी हैं–

क) **भट्टभास्कर मिश्र** – इनका समय विक्रम की एकादश शताब्दी है। इन्होंने कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता पर 'ज्ञानयज्ञ' नामक भाष्य रचा था। इस भाष्य का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें भट्टभास्कर ने लुप्तप्राय निघण्टु के उद्धरणों का संग्रह करके वैदिक मन्त्रों का उद्धरण देते हुए मन्त्रों की आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से वैदुष्य मण्डित प्रामाणिक व्याख्या की है।

ख) **सायण** – सायण ने सर्वप्रथम कृष्ण यजुर्वेद की इसी शाखा पर अपना भाष्य लिखा था क्योंकि वे मूलतः यजुर्वेद की इसी शाखा के वेदपाठी ब्राह्मण थे।

शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार –

शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों संहिताओं पर भाष्य उपलब्ध होता है–

माध्यन्दिन संहिता के भाष्यकार –

क) **उव्वट** – वज्रट के पुत्र उव्वट गुर्जर प्रदेश के आनन्दपुर के निवासी थे। ये भोजराज के समकालीन थे। अतः इनका समय 11वीं शताब्दी है। इन्होंने अपने नाम से ही शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता पर भाष्य रचा था, जिसे अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है।

ख) **महीधर** – काशी में उत्पन्न महीधर नागरीय ब्राह्मण थे। इन्हें काशीनरेश का राजाश्रय प्राप्त था। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता पर 'वेददीप' नामक भाष्य रचा। इनका वैशिष्ट्य यह है कि इन्होंने उव्वटभाष्य निरुक्त, श्रौतसूत्र तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का अवलम्बन करके याज्ञिक क्रिया के विधानों को सुगम बनाया। इनका समय 16वीं शताब्दी का मध्य भाग है।

काण्व संहिता का भाष्यकार –

क) **हलायुध** – इन्हें बंगनरेश लक्ष्मणसेन का समकालीन (1170-1200ई.) माना जाता है। इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद-काण्व संहिता पर 'ब्राह्मणसर्वस्वम्' भाष्य रचा था। इसके अतिरिक्त चार अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी।

ख) **सायण** – इन्होंने सम्पूर्ण काण्व संहिता पर 'माधवीय' नामक भाष्य रचा था।

ग) **अनन्ताचार्य** – षोडश शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न अनन्ताचार्य ने काण्व संहिता के उत्तरार्द्ध पर भाष्य लिखा था। यह भाष्य महीधर से प्रभावित है।

3) **सामवेद के भाष्यकार** – सामवेद पर चार भाष्यकारों के भाष्य उपलब्ध होते हैं–

क) **माधवाचार्य** – सामभाष्यकारों में इनका नाम अग्रणी है। इन्होंने सामवेद पर 'विवरण' नामक भाष्य रचा था जो अध्यावधि अप्रकाशित है। इनमें पूर्वार्चिक पर रचित भाष्य का नाम 'छन्दसिकाविवरण' तथा उत्तरार्चिक पर रचित भाष्य का नाम 'उत्तरविवरण' है। इनका समय वि.सं. 657 से पूर्व माना जाता है।

ख) **भरतस्वामी** – नारायण तथा यज्ञदादेवी के पुत्र भरतस्वामी ने होसलाधीश्वर रामनाथ की छत्रच्छाया में 'श्रीरंगनामक' वैष्णवतीर्थ में सामवेदीय भाष्य का

प्रणयन किया था। यह भाष्य भी अप्रकाशितावस्था में है। इनका समय 13वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

ग) **गुणविष्णु** – ये सामवेदीय भाष्यकारों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनका समय बंगनरेश लक्ष्मणसेन के समकाल (12-13 शताब्दी) माना जाता है। इन्होंने सामवेद के नित्य नैमित्तिक कर्म में प्रयुज्यमान साममन्त्रों की व्याख्या की थी, जिसका प्रचलन मिथिला तथा बंग प्रदेश में अधिक था।

घ) **सायण** – सायण ने गुणविष्णु के सामवेदीय भाष्य को आधार बनाकर सामवेद पर माधवीय भाष्य का प्रणयन किया।

4) **अथर्ववेद के भाष्यकार** – सम्पूर्ण अथर्ववेद पर एकमात्र सायण प्रणीत भाष्य ही उपलब्ध होता है। यह भाष्य भी अधूरा ही प्रकाशित हुआ है।

1.6 सारांश

वैदिक वाङ्मय के चार सोपान हैं– वेद (मन्त्र/संहिता) ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। इनमें विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय 'वेद' है। 'वेद' शब्द का अर्थ है– पवित्र ज्ञान, जिसका प्राचीन ऋषियों ने अपनी तपस्या से मन्त्र रूप में साक्षात्कार किया था। वैदिक वाङ्मय में वेद के स्वरूप के विषय में दो मान्यतायें प्रचलित रहीं– (1) मन्त्र और ब्राह्मण दोनों की संयुक्त संज्ञा 'वेद' है। (2) वेद मन्त्रात्मक (संहितात्मक) हैं किन्तु इनमें से ब्राह्मणों के वैदिक मन्त्रों (संहिता) के व्याख्यानरूप होने से 'वेद' शब्द का प्रयोग प्रधानतः मन्त्र संहिता के लिये ही होता है। वेद अपौरुषेय है किन्तु कतिपय भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने इसके काल निर्धारण का भी प्रयास किया है।

वेदमन्त्र आरम्भ में अविभक्त थे। **'मननात् मन्त्रः'** (नि.) जिससे यज्ञ का सम्पादन अथवा देवस्तुति का विधान किया जाता है वे मन्त्र हैं। वेदमन्त्र ऋक् (पद्यात्मक), यजुष् (गद्यात्मक) तथा साम (गानात्मक) रूप होने से त्रिस्वरूपात्मक थे, जिनको 'वेदत्रयी' या 'त्रयी' कहा जाता है अर्थात् वेदमन्त्रों के त्रिस्वरूपात्मक होने से 'वेद' का ही अपर नाम 'त्रयी' भी था। कालान्तर में वेदमन्त्रों की विशालराशि का ऋषियों ने एक सुव्यवस्थित क्रम में संकलन किया, जिसे 'संहिता' कहते हैं। पौराणिक मान्यतानुसार महर्षि कृष्णद्वैपायन ने सर्वप्रथम यज्ञानुष्ठान में नियुक्त चार ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा) के सौविध्य की दृष्टि से चार संहिताओं का निर्माण किया– (1) ऋग्वेद संहिता (2) यजुर्वेद संहिता (3) सामवेद संहिता (4) अथर्ववेद संहिता।

ऋचाओं का समूह ही ऋग्वेद है। ऐसे मन्त्र, जिनमें देवताओं की स्तुतियाँ हों, उन्हें ऋचा कहते हैं। ऋग्वेद संहिता में 10 मण्डल, 85 अनुवाक्, 2006 वर्ग है। अष्टकक्रम से इसमें 8 अष्टक, 64 अध्याय तथा 1017 सूक्त है। ऋग्वेद के मण्डलों की व्यवस्था ऋषियों के आधार पर की गयी है। प्रथम, नवम, दशम मण्डलों के दृष्टा अनेक ऋषि हैं किन्तु द्वितीय से अष्टम मण्डल तक क्रमशः गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वशिष्ठ तथा कण्व और उनके वंशज हैं। ऋग्वेद में 33 देवताओं की स्तुतियाँ की गयी हैं। ऋग्वेद की अनेक शाखायें थीं जिनमें प्रमुख पाँच शाखायें थीं– शाकल, वाष्कल, आश्वलायनी, शांखायनी, मण्डूकायनी किन्तु इसकी केवल शाकल शाखा ही उपलब्ध होती है। ऋग्वेद के महत्त्वपूर्ण सूक्तों में नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, पुरुष सूक्त, वागम्भृणी सूक्त, यम सूक्त, दार्शनिक दृष्टि से तथा श्रद्धा सूक्त, संवाद सूक्त

संज्ञान सूक्त और दानस्तुतियाँ लौकिक तथा सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। 'होतृमण्डल' से सम्बद्ध होने के कारण इस वेद को 'होतृवेद' भी कहते हैं।

यजुर्वेद कर्मकाण्ड प्रधान है। यज्ञादि कर्मों के प्रतिपादक गद्यात्मक मन्त्रों को यजुष् कहा जाता है। यजुर्वेद संहिता में इन्हीं मन्त्रों का संग्रह है। यजुर्वेद के दो विभाग हैं– (1) कृष्ण यजुर्वेद (2) शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों का सम्मिश्रण है जबकि शुक्ल यजुर्वेद में मात्र मन्त्र हैं। यजुर्वेद के भी प्रायः वही ऋषि हैं, जो ऋग्वेद के हैं तथापि इसमें याज्ञिकानुष्ठान के निमित्त परमेष्ठ्यादि ऋषि बताये गये हैं। यजुर्वेद संहिता का ऋत्विज् होता तथा उसके सहयोगी है। इनके समूह को होतृमण्डल भी कहते हैं। शाखा की दृष्टि से कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखायें उपलब्ध हैं– (1) तैत्तिरीय (2) मैत्रायणी (3) कठ (4) कपिष्ठल तथा शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखायें हैं– (1) माध्यन्दिन तथा (2) काण्व संहिता।

तृतीय संहिता का नाम सामवेद संहिता है साम का अर्थ है– गान। इसमें ऋक् मन्त्रों पर स्वरसहित सामगानों का संग्रह है। सामवेद संहिता के दो भाग हैं– (1) पूर्वार्चिक (2) उत्तरार्चिक। इनमें क्रमशः 6 तथा 9 प्रपाठक हैं। पूर्वार्चिक में सामयोनि ऋचाओं का संग्रह है तथा उत्तरार्चिक में स्वरांकन सहित सामगान है। सामवेद में ऋग्वेद की ऋचाओं को ही गानरूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः ऋग्वेद के ऋषि ही सामवेद के भी मन्त्रदृष्टा ऋषि हैं। गान की दृष्टि से भी ऋषियों का निर्धारण है। सामवेद में दोनों अर्चिकों में प्रतिपाद्य देवताओं गानों, सवन, स्वर, सामवैविध्य की दृष्टि से देवताओं का निर्णय किया गया है। सामवेद की सहस्राधिक शाखायें हैं किन्तु सम्प्रति तीन शाखायें ही उपलब्ध हैं– (1) कौथुमीया (2) राणायनीया (3) जैमिनीया। सामवेद का संकलन 'उद्गाता' तथा उसके सहायक ऋत्विजों के सौकर्य के लिये किया गया था। अतः इसे 'उद्गातृ वेद' भी कहा जाता है।

चतुर्थ वेद संहिता है– अथर्ववेद। इसे अथर्वांगिरसवेद, क्षत्रवेद, अंगिरसवेद तथा ब्रह्मवेद भी कहते हैं। ऋग्वेदादि तीनों वेद जहाँ आमुष्मिक फलप्रदायक है वहीं अथर्ववेद ऐहिक तथा आमुष्मिक दोनों फलों की सिद्धि करता हैं। इसमें शान्तिक-पौष्टिक-भैषज्य-आभिचारिक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। पतंजलि ने अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया है किन्तु सम्प्रति अथर्ववेद की दो शाखा ही उपलब्ध हैं– (1) शौनकीया (2) पैप्पलाद। शौनकीया शाखा में 20 काण्ड, 736 सूक्त तथा 5987 मंत्र हैं। पैप्पलाद शाखा में 20 काण्ड, 923 सूक्त तथा 8000 से कुछ कम मन्त्र हैं।

वेद गद्यपद्यगान की दृष्टि से त्रिस्वरूपत्मक होने से 'वेदत्रयी' कहलाते हैं किन्तु यज्ञानुष्ठान हेतु चार ऋत्विजों की दृष्टि चार अर्थात् वेदचतुष्टयी हैं।

वैदिक भाष्यकारों में ऋग्वेद के भाष्यकार के रूप में माधवभट्ट, स्कन्दस्वामी, नारायण, उद्गीथ, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आनन्दतीर्थ, आत्मानन्द तथा सायण, यजुर्वेद के भाष्यकारों में भट्टभास्कर, महीधर, हलायुध, अनन्ताचार्य, सायण, सामवेद के भाष्यकारों में माधवाचार्य, भरतस्वामी, गुणविष्णु, सायण तथा अथर्ववेद के भाष्यकार के रूप में सायण उल्लेखनीय है।

1.7 शब्दावली

मन्त्र – गुप्तकथन या शब्दात्मकाभिव्यक्ति

संहिता	–	विशेषक्रम में मन्त्रों का सुव्यवस्थित संग्रह
त्रयी	–	वेदमंत्रों का पद्यात्मक गद्यात्मक तथा गानात्मक स्वरूप
ऋषि	–	मन्त्रदृष्टा
ऋत्विज्	–	श्रौतयज्ञ के विधान के ज्ञाता
सोमयाग	–	सोमनामक लताविशेष से किया जाने वाला याग विशेष
शान्तिक	–	शान्ति हेतु क्रियमाण कर्म
पौष्टिक	–	पुष्टि हेतु क्रियमाण कर्म
भैषज्य	–	जीवनप्रदायिनी शक्ति
सामभक्ति	–	साम का विभाग
अभिचार	–	मन्त्र प्रयोग से रोगकरण तथा रोगहरण

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) निरुक्तम् – यास्काचार्य, मेहरचन्द लक्ष्मणदास प्रकाशन, संस्करण–1982
2) ऋग्भाष्यभूमिका – जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी –1991
3) ऋक् संहिता – शिवनाथ आहिताग्नि, नाग प्रकाशन, दिल्ली द्वि. सं. 1991
4) संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास– प्रथम खण्ड (वेद), बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
5) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
6) वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः, आचार्यजगदीशचन्द्रमिश्रः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7) वैदिक साहित्य– बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1) काठक संहिता का परिचय दीजिए।
2) वेद के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3) ऋग्वेद संहिता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4) ऋग्वेद के ऋषिमण्डल तथा देवताओं पर प्रकाश डालिए।
5) यजुर्वेद का संक्षिप्त परिचय देते हुए शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
6) यजुर्वेद के भाष्यकारों का परिचय दीजिए।
7) सामवेद की विषय-वस्तु स्पष्ट कीजिए।
8) सामगान पर एक निबन्ध लिखिए।
9) अथर्ववेद संहिता का संक्षिप्त परिचय देते हुए प्रतिपाद्य वस्तु स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2 ब्राह्मण साहित्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- 'ब्राह्मण' शब्द के अभिप्राय को जान सकेंगे।
- वेद तथा ब्राह्मण के अन्तर्सम्बन्ध को जान सकेंगे।
- ब्राह्मणों के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- ब्राह्मणों के देशकाल तथा प्रतिपाद्य विषय के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण-साहित्य के महत्त्व को जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

वैदिक वाङ्मय के चार स्तम्भों संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् में से संहिता तथा ब्राह्मण दोनों की ही संयुक्त संज्ञा 'वेद' है–**'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।'** (आपस्तम्ब. 31)। साथ ही उपासना की कर्मकाण्डीय तथा ज्ञानकाण्डीय पद्धतियों की दृष्टि से भी दोनों का सम्बन्ध समानरूप से 'कर्मकाण्ड' से है। आपस्तम्ब का कथन है कि मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को 'वेद' इसलिये कहा जाता है क्योंकि 'मन्त्रसंहितायें' तथा 'ब्राह्मण' दोनों ही यज्ञ के प्रमाणस्वरूप हैं–**'मन्त्रब्राह्मणयोः यज्ञस्य प्रमाणम्।'** अतः मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद कहने का तात्पर्य यही है कि वेदमन्त्रों (संहिताओं) की स्थिति बिना ब्राह्मण ग्रन्थों के पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकती। वैदिक संहिताओं से अतिरिक्त अंश ही ब्राह्मण है–**'शेषे ब्राह्मण शब्दः।'** (मीमांसा सूत्र 2.1.33) जो कि वैदिक मन्त्रों की याज्ञिक दृष्टि से विनियोगात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अतः वैदिक संहिताओं के अनन्तर उनसे सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक हो जाता है।

2.2 ब्राह्मण-साहित्य – परिचय

वैदिक संहिताओं के शेष (अतिरिक्त) अंश ही ब्राह्मण हैं। जैसा कि जैमिनी का वचन है–**'शेषे ब्राह्मण शब्दः।'** वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहा गया है, तथापि ये (ब्राह्मण ग्रन्थ) वस्तुतः वैदिक मन्त्रों के व्याख्यानरूप हैं जैसा कि सायण ने अपने भाष्य में स्पष्ट किया है–

"यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः, तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानस्वरूपत्वाद् मन्त्रा एवादौ समाम्नातः।" (तैत्ति. सं, सा०भा०)

ऋग्वेदभाष्यभूमिका में भी कहा गया है–**"अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्"** (ऋ. भा. भू. पृ. 37)

2.2.1 ब्राह्मण शब्द का अर्थ

'ब्राह्मण' शब्द सामान्यतः जातिविशेष तथा ग्रन्थविशेष दोनों अर्थों का वाचक है तथा इसका प्रयोग पुँल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में प्राप्त होता है किन्तु वैदिक वाङ्मय के परिप्रेक्ष्य में 'ब्राह्मण' शब्द 'ग्रन्थविशेष' अर्थ का प्रतिपादक है तथा केवल

नपुंसकलिङ्ग में ही प्रयुक्त हुआ है– ''**ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्।**'' (मेदिनीकोश)

वैदिक वाङ्मय में 'ग्रन्थ' के अर्थ में 'ब्राह्मण' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है– **"एतद् ब्राह्मणन्येव पञ्चहवींषि।"** (तै.सं. 3.7.1.1) माधवाचार्य तथा सायणाचार्य ने भी 'ब्राह्मण' शब्द का नपुंसकलिङ्ग तथा 'ग्रन्थविशेष' के अर्थ में ही प्रयोग किया है–

"मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चेति द्वौ भागौ, तेन मन्त्रतः अन्यद् ब्राह्मणमित्येदत् भवेद् ब्राह्मणलक्षणम्।"(जैमिनीयन्यायमालाविस्तर 2.1.8)

''**अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्।**'' (ऋ.भा.भू. पृ.37)

ब्राह्मण शब्द 'ब्रह्म' शब्द में 'अण्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। 'ब्रह्म' शब्द दो अर्थों का वाचक है– मन्त्र तथा यज्ञ। इस दृष्टि से 'ब्राह्मण' शब्द का तात्पर्य उन ग्रन्थों से है, जिनमें याज्ञिक दृष्टि से मन्त्रों की विनियोग निर्देशपूर्वक व्याख्या की गयी है। तैत्तिरीय संहिता में अपने भाष्य में भट्टभास्कर ने कहा है– **"ब्राह्मणंनामकर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः"** (तै.सं.1.5.1,भट्टभास्करकृतभाष्यम्)। ऐसी भी मान्यता है कि यज्ञ-यागादि विधान करने वाले एकमात्र ब्राह्मण पुरोहितों के निजी ग्रन्थ होने के कारण इन ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहा गया। वाचस्पतिमिश्र ने एक श्लोक से ब्राह्मण ग्रन्थ के स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट किया है–

"नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।"

2.2.2 ब्राह्मण ग्रन्थों का देशकाल

ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध भौगोलिक परिवेश से स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ की आविर्भाव स्थली कुरुपाञ्चाल प्रान्त तथा सरस्वती नदी का अन्तर्वर्ती प्रदेश था। ताण्ड्य ब्राह्मण में सारस्वत प्रदेश का गम्भीर विवेचन हुआ है। तदनुसार सरस्वती के लुप्त होने के स्थल को 'विनशन' तथा उसके पुनः उद्गम-स्थल को 'लक्षप्रास्रवण' कहते हैं। (तै.ब्रा. 25.10.21) यमुना तथा सरस्वती और दृषद्वती के मध्यवर्ती प्रदेश तथा उनके सङ्गम आदि का भी ताण्ड्य ब्राह्मण में निर्देश मिलता है। इनमें सर्वप्रमुख सङ्केत हैं– कुरुक्षेत्र को प्रजापति की वेदी मानना। **"एतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रमिति।"** (तां.ब्रा. 25.13.3)। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का सङ्कलन तथा यज्ञ-यागादि की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा इसी प्रान्त में हुई थी। मनुस्मृति (2/22) के प्रमाणानुसार यही देवनिर्मित प्रदेश 'ब्रह्मावर्त' के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ था तथा यही यज्ञ संस्कृति का केन्द्र तथा पीठस्थल है, जहाँ ब्राह्मणों की यज्ञप्रक्रिया की विकासयात्रा सम्पन्न हुई।

इसी प्रकार ब्राह्मणों के प्रणयन काल के निर्धारण के सम्बन्ध में ब्राह्मणों में प्राचीनतम ग्रन्थ 'शतपथ ब्राह्मण' का प्रमाण उल्लेखनीय है। शतपथ ब्राह्मण में एक ज्योतिषीय घटना का उल्लेख किया गया है। तदनुसार कृत्तिका ठीक पूर्वदिशा में उदित होती है। वहाँ से प्रच्युत नहीं होती। प्रसिद्ध ज्योतिषी शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित की गणनानुसार इस घटना का काल विक्रम से तीन हजार वर्ष पूर्व निश्चित होना चाहिये जबकि पाश्चात्य विद्वानों में विन्टरनित्ज ने ज्योतिषीय गणनानुसार इस ग्रह स्थिति को 1100 ई.पू. माना है, किन्तु विन्टरनित्ज के द्वारा निर्धारित इस कालसीमा को ब्राह्मण ग्रन्थों

का आविर्भाव काल नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा करने पर वेदाङ्गों को ब्राह्मणों से पूर्ववर्ती मानना पड़ेगा, जो कि सर्वथा अनुचित है। अतः बालकृष्ण दीक्षित के मत को स्वीकार करते हुये ब्राह्मणों के आविर्भाव की अनुमानित सीमा 3000 ई.पू. से लेकर 2000 ई.पू. तक निर्धारित की है जो कि सर्वथा उचित है।

2.2.3 ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य

वैदिक संहिताओं के स्वरूप तथा प्रतिपाद्य विषय से ब्राह्मण ग्रन्थों का स्वरूप और प्रतिपाद्य विषय सर्वथा भिन्न है। वैदिक संहितायें जहाँ पद्य-गद्य-गानात्मक स्वरूप वाली तथा देवस्तुतिप्रधान हैं, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थ एकमात्र गद्यात्मकशैली में रचे गये हैं तथा उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है– 'यज्ञों की सर्वाङ्गपूर्ण मीमांसा।' ब्राह्मणों में इस प्रतिपाद्य-विषय के प्रतिपादन तथा प्रतिष्ठा के दो मूलाधार हैं– 1. विधि, 2. अर्थवाद।

इनमें 'विधि' से अभिप्राय है–'यज्ञ तथा उसके अङ्गोपाङ्गों के अनुष्ठान का उपदेश।' ये विधियाँ ही ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रधान विषय हैं। शबरस्वामी ने विधियों के दश प्रकारों का निर्देश किया है–

> **हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।**
> **परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।।** (शा.भा. 2.1.8)

विधियों के इन दश प्रकारों में भी प्रधानता 'विधि' की ही है, शेष (अन्य) जितने भी अवान्तर विषय हैं, वे सभी वस्तुतः 'विधि' के ही पोषक हैं। इन अवान्तर विषयों को ही मीमांसकों ने 'अर्थवाद' कहा है। विधि का ही स्तुति तथा निन्दारूप में पोषण या निर्वहन करना ही 'अर्थवाद' है– **"विहितार्थे प्ररोचना निषिद्धकार्ये निवर्तना अर्थवादः।"** इस प्रकार 'विधि' तथा 'अर्थवाद' में अङ्गाङ्गिभाव (पोष्यपोषक भाव) सम्बन्ध है।

ब्राह्मणों में विधि का विधान भी सयुक्तिक है। प्रत्येक विधि के मूल में कोई न कोई 'हेतु' है। अतः उन हेतुओं का निर्देश करना ब्राह्मण का कार्य है। विधि-विधान में किसी मन्त्र का प्रयोग किस उद्देश्य के लिये किया गया है? इसकी भी सयुक्तिक (विनियोगपूर्वक) व्यवस्था भी ब्राह्मण ग्रन्थों में की गयी है। साथ ही स्थान-स्थान पर अनुष्ठेय वस्तुओं (विधियों) की पुष्टि हेतु विविध प्राचीन ऐतिहासिक आख्यान भी दिये गये हैं, जिससे याज्ञिकों की यागों में श्रद्धा उत्पन्न हो। इसी प्रकार निर्वचन या निरुक्त का उदय भी इन्हीं विधियों में प्रयुक्त शब्दविशेष की व्युत्पत्ति दिखाने से होता है। अतः ब्राह्मणों में 'विधि' को केन्द्र में रखकर ही निरुक्ति, स्तुति-निन्दारूप-अर्थवाद, आख्यान, हेतु, वचनादि विविध विषय अपना आवर्तन पूरा करके ब्राह्मणों को सम्पूर्ण कलेवर प्रदान करते हैं।

विषय विवेचन की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रधानतः सात बिन्दु (विभाग/अंश) हैं–(1) विधि, (2) विनियोग, (3) हेतु, (4) अर्थवाद, (5) निर्वचन, (6) आख्यान, (7) उपनिषद्।

1) **विधि** – 'विधि' का अभिप्राय है– यज्ञों के साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान विधियों का उपदेश अर्थात् यज्ञों का अनुष्ठान कब, कहाँ, कैसे और किसके द्वारा होना चाहिये? यह सब कर्मकाण्डसम्बन्धी विधान 'विधि' भाग से सम्बद्ध है। इन सबका उपदेश ब्राह्मणों में किया गया है। उदाहरणार्थ– ताण्ड्य ब्राह्मण (6/7) में अनेक विधियाँ उपलब्ध होती हैं। वहाँ 'बहिष् पवमान' के लिये अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान किया गया है इसके लिये तीन नियमों

का पालन अत्यावश्यक है– (1) प्रसर्पण के समय ऋत्विजों का धीरे-धीरे पदन्यास, (2) मौन रहना, (3) प्रसर्पण करते समय ऋत्विजों का एक विशेष क्रम में पङ्क्तिबद्ध होकर सञ्चरण करना। अन्यथा (पङ्क्ति टूटने पर) हानि तथा अनर्थ की सम्भावना होती है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण तो विधि-विधानों की विपुल राशि का भण्डार है। शतपथ ब्राह्मण की आरम्भिक कण्डिका में ही सहेतुक विधि का निर्देश मिलता है। पौर्णमास इष्टि में दीक्षित होने वाला व्यक्ति आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों के बीच पूरब की ओर खड़ा होकर जल स्पर्श करता है। जलस्पर्श क्यों? जल मेध्य होता है अर्थात् वह यज्ञ के लिये उपयोगी होता है। झूठ बोलने वाला व्यक्ति यज्ञ करने के लिये उपयुक्त नहीं होता। अतः जल का स्पर्श करने से वह पापों को दूर कर मेध्य (पवित्र) बन जाता है तथा पवित्र होकर दीक्षित हो जाता है।

2) **विनियोग** – ब्राह्मण ग्रन्थों में "किस मन्त्र का प्रयोग किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये किया जाता है?" इसकी भी सयुक्तिक व्यवस्था सर्वत्र की गयी है। मन्त्र के अन्तरङ्ग अर्थ से अपरिचित पाठक की मन्त्र के विनियोग को लेकर अश्रद्धा हो सकती है। अतः ब्राह्मणों में मन्त्रों के विनियोग की युक्तिमत्ता सिद्ध की गयी है। ब्राह्मणों में प्रायः मन्त्र के पदों से ही युक्तिमत्ता सिद्ध हो जाती है, जैसे–'**स नः पवस्व शं गवे**' (ऋ.9.11.3) ऋचा का गायन पशुओं की रोगनिवृत्ति के लिये किया जाता है। इसकी सिद्धि मन्त्र के पदों से ही हो जाती है परन्तु कुछ स्थितियों में मन्त्र के विनियोग की युक्तिमत्ता को सिद्ध करना होता है। ब्राह्मणों में ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जैसे–'**आ नो मन्त्रवरुणा**' (ऋ.3.62.16) मन्त्र के गायन का विनियोग दीर्घरोगी की रोगनिवृत्ति के लिये है। इस विनियोग की युक्तिमत्ता के विषय में ब्राह्मण का कथन है– मित्रावरुण का सम्बन्ध प्राण तथा अपान से है। दिन के देवता होने से ही मित्र प्राण के प्रतिनिधि हैं तथा रात्रि के देवता होने के कारण वरुण अपान के प्रतीक हैं। अतः दीर्घरोगी के शरीर में मित्रावरुण के रहने की प्रार्थना अन्ततः प्राण तथा अपान को धारण करने का प्रकारान्तर से सङ्केत है। फलतः इस मन्त्र का पूर्वोक्त विनियोग युक्ति सङ्गत है। इस प्रकार मन्त्रों की विनियोगपरक व्याख्या करना भी ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रतिपाद्य रहा है।

3) **हेतु** – ब्राह्मण ग्रन्थों में विविध विधियों की पृष्ठभूमि में निहित कारणों पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है, उदाहरणार्थ–अग्निष्टोम याग में 'उद्गाता' 'सदस्' नामक मण्डप में औदुम्बर वृक्ष की शाखा का उच्छ्रयण करता है। औदुम्बर वृक्ष की ही शाखा क्यों? तैत्तिरीय ब्राह्मण सकारण इसकी युक्तियुक्तता को स्पष्ट करता है– प्रजापति ने देवताओं के लिये ऊर्ज का विभाग किया था। उसी से उदुम्बर वृक्ष की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार उदुम्बर वृक्ष का देवता प्रजापति है। उद्गाता का सम्बन्ध भी प्रजापति से है। अतः उद्गाता उदुम्बर की शाखा का उच्छ्रयण अपने प्रथम कर्म से करता है। ब्राह्मणों में प्रतिपादित ये हेतुवचन यागविधियों में श्रद्धा उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

4) **अर्थवाद** – ब्राह्मणों में यज्ञादि में समधिक महत्त्वशाली विधि की प्रशंसा (स्तुति) तथा निषिद्ध पदार्थों की निन्दा के अनेक प्रसङ्ग हैं। यही अर्थवाद कहलाते हैं। अर्थवाद का प्रयोग विधि की आस्थापूर्वक पुष्टि के लिये ब्राह्मणों में किया गया है। जैमिनी ने अर्थवाद के प्रधानतः तीन भेद किये हैं– 1. गुणवाद, 2. अनुवाद, 3. भूतार्थानुवाद। इनमें भूतार्थानुवाद के पुनः सात भेद किये हैं– स्तुत्यर्थवाद, फलार्थवाद, सिद्धार्थवाद, निरर्थवाद, परकृति, पुराकल्प और मन्त्र। इस प्रकार

निन्दा, स्तुति, हेतु, निर्वचन, विनियोग आख्यानादि अर्थवाद में ही समाहित हो जाते हैं।

5) **निर्वचन (निरुक्ति)** – ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों के निर्वचन (व्युत्पत्ति) का भी स्थान-स्थान पर निर्देश किया गया है। इन निर्वचनों के माध्यम से याग में प्रयोज्य पदार्थ की सार्थकता को निरूपित किया गया है। जैसे–'बृहत्साम' पद के अर्थ की सार्थकता को निरुक्त के माध्यम से ताण्ड्य ब्राह्मण में स्पष्ट किया गया है–**'ततो बृहदनु प्राजायत। बृहन् मर्या इदं स ज्योगन्तरभूदिति तद् बृहतो बृहत्त्वम्।'** (ताण्ड्य ब्रा. 7.6.5) अर्थात् इस साम का 'बृहत्साम' नामकरण इसलिये है, क्योंकि इस साम ने प्रजापति के मन में बृहत्काल तक निवास किया था। ब्राह्मणों में निर्दिष्ट ये निर्वचन भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ये ही कालान्तर में निरुक्त के आधार भी बने।

6) **आख्यान** – ब्राह्मण ग्रन्थों में विधि की सयुक्तता को प्रदर्शित करने के लिये विविध रोचक आख्यानों का भी उल्लेख किया गया है। ब्राह्मणों में वर्णित ये आख्यान दो प्रकार के हैं– 1. स्वल्पकाय, 2. दीर्घकाय। इनमें प्रथम प्रकार के आख्यानों में उन कथाओं की गणना है, जो सद्यः एव विधि की सयुक्तिकता को प्रमाणित करते हैं। ऐसे आख्यानों में प्रमुख हैं– वाक् का देवों का परित्याग कर जल और अनन्तर वनस्पति में प्रवेश सम्बन्धी आख्यान। इन लघु आख्यानों में कहीं-कहीं गम्भीर तात्त्विक विषयों का भी सङ्केत मिलता है, जैसे– शतपथ ब्राह्मण में वाणी तथा मन में से मन की श्रेष्ठता प्रतिपादनविषयक आख्यान (शत. ब्रा. 1.4.5.8 –12)। दीर्घ आख्यानों में शुनःशेप आख्यान, पुरुरवा-उर्वशी आख्यान, मनु के द्वारा जलप्लावन के अनन्तर सृष्टि के पुनरारम्भ सम्बन्धी आख्यान। ये आख्यान ब्राह्मणों के नीरस विषयों के मध्य रोचकता का आधान करते हैं।

7) **उपनिषद्** – ब्राह्मणों का उपनिषद् भाग ब्रह्मतत्त्व पर अपनी गहन विवेचना प्रस्तुत करता है।

2.2.4 ब्राह्मणों का महत्त्व

यज्ञात्मक ब्रह्म का स्वरूप जिससे जाना जाता है, वह ग्रन्थ 'ब्राह्मण' है। इसमें वैदिक मन्त्रों की विनियोगात्मक व्याख्या की गयी है। अतः ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञसंस्था के उद्भव तथा विकास को समझने की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय हैं। वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण ग्रन्थों का कितना महत्त्व है? इसे कुछ बिन्दुओं से समझ सकते हैं–

1) वैदिक संहिताओं में मन्त्रों का सङ्कलन है जिनका यागानुष्ठानों में विनियोग किया जाता है। किस यज्ञविशेष में किस मन्त्र का विनियोग किया जाना है? किस प्रयोजन विशेष की सिद्धि के लिये कौन सा मन्त्र विहित है? इसका उत्तर ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है।

2) ब्राह्मणों में यज्ञों को सर्वोपरि कर्म कहा है–**'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।'**(शत.ब्रा. 1.7. 3.5), 'यज्ञ' मानवजाति के लिये किस प्रकार उपयोगी है? यज्ञ क्यों श्रेष्ठ कहे गये हैं? इसका समाधान ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है कि यज्ञों से मनुष्य का वैयक्तिक उत्थान होता है। उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। बार-बार मृत्यु से छूटना ही मुक्ति है–**'सर्वस्मात् पापात्मनो निर्मुच्यते य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।'** (शत.ब्रा. 11.5.6.9)

3) यज्ञ का द्वितीय फल है– लोककल्याण, क्योंकि यज्ञ में दी गयी हवि अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर सूर्य तक पहुँचती है और मेघों के साथ मिश्रित होकर वृष्टि के रूप में पृथिवी का अभिषेक करके प्रजा को धनधान्य से समृद्ध बनाती है। **'अग्निर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः'**(शत. ब्रा. 5.3.5.17)

4) ब्राह्मण-ग्रन्थ वेदों का व्याख्यान रूप हैं। अतः उनमें वैदिक मन्त्रों से सम्बद्ध अनसुलझे प्रश्नों तथा रहस्यों का भी समाधान तथा उत्तर मिलता है, उदाहरणार्थ– वेदों में विविध लोकों से सम्बद्ध देवताओं की स्तुतियाँ हैं, किन्तु कितने लोकदेवता हैं? इसका उत्तर ब्राह्मण देता है कि तीन लोक हैं–**'त्रयो वा इमे लोकाः'** (शत. ब्रा. 1.2.4.20) ये तीन लोक कौन-कौन से हैं? ब्राह्मण बताते हैं– पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक, **'पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः'**। (शत. ब्रा. 11.8.5.1)

5) ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था से सम्बन्धित सभी कर्तव्याकर्त्तव्यों का निर्देश किया गया है, जैसे– ब्राह्मणों का शस्त्र यज्ञ है, **एतानि वै ब्राह्मणायुधानि यद्यज्ञायुधानि** (सं. 7.19)। क्षत्रियों का बल युद्ध है, (शत. ब्रा. 13.1.5.6)। वैश्य तो साक्षात् राष्ट्र है क्योंकि उसके धन कमाने पर ही चारों वर्णों का कार्य चलता है। शूद्र का कार्य श्रम है (शत. ब्रा. 13.6.10)। इस प्रकार धर्मशास्त्रों का पूर्वसूत्र ब्राह्मणों में मिलता है।

6) वैज्ञानिक तथा आयुर्वेद की दृष्टि से भी ब्राह्मण ग्रन्थों का चिन्तन महत्त्वपूर्ण है, जिनका समर्थन अद्यावधि किसी न किसी रूप में होता आ रहा है, जैसे– ऋतुओं के सन्धिकाल को व्याधि का कारण ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है –**'ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायन्ते'** (गो.ब्रा.1.19) रोग के कीटाणुओं को अग्नि भस्मसात् करती है–**'अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता'**।(शत.ब्रा.1.2.1.6)। अग्नि का सार सुवर्ण है। अतः आर्य सुवर्ण आभूषण धारण करते थे।

7) ब्राह्मण ग्रन्थों का रेखागणितीय महत्त्व भी है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदियाँ तक चित्तियां बनाने का विधान है। ये विधान रेखागणित का जनक है। दो अश्र, चार अश्र, द्रोणाकार, वाली वेदियों तथा चित्तियों के निर्माण ने ही रेखागणित का रेखाङ्कन किया।

8) ब्राह्मणों में यज्ञकर्म के विधि-विधानों के साथ ही शास्त्रार्थ पद्धति से कर्मफल, पुनर्जन्म, ब्रह्म, लोक-परलोक नाचिकेताग्नि के रहस्य इत्यादि गम्भीर विषयों का भी उपबृंहण किया गया है जिसका प्रतिफलन हमें कालान्तर में उपनिषद् तथा षड्दर्शनों के रूप में प्राप्त होता है। अतः उपनिषदादि के गम्भीर विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भी ब्राह्मणों का अध्ययन अनिवार्य है।

9) ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी ब्राह्मण नितान्त उपयोगी है। ब्राह्मण ग्रन्थों के विविध आख्यान जहाँ विविधपुराणों के लिये उपजीव्य सिद्ध होते हैं वहीं ब्राह्मणों में कुरु, पाञ्चाल प्रदेशों सरस्वती नदी के उद्गम स्थलादि भौगोलिक परिवेश की भी सूचना मिलती है।

10) भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी ब्राह्मण ग्रन्थ की भाषा संहितायुग तथा उपनिषद् युग (दो युगों) की भाषा के मध्य सेतु का कार्य करती है जिससे भाषा के क्रमिक विकास को जाना जा सकता है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों का महत्त्व अपरिमित है।

2.3 ऋग्वेदीय ब्राह्मण

ऋग्वेद संहिता से सम्बद्ध केवल दो ब्राह्मण उपलब्ध होते हैं– 1.ऐतरेय ब्राह्मण, 2. शाङ्खायन ब्राह्मण।

2.3.1 ऐतरेय ब्राह्मण

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में ऐतरेय ब्राह्मण का प्रथम स्थान है। यह ब्राह्मण ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बद्ध है। इसके प्रवचनकर्ता महिदास ऐतरेय हैं। षड्गुरुशिष्य ने इनकी माता का नाम 'इतरा' बताया है जबकि भट्टभास्कर के अनुसार इनके पिता का नाम 'इतर' था जो कि ऋषिकुलोत्पन्न थे। ऐतरेय ब्राह्मण में 40 अध्याय, 8 पञ्चक तथा 258 खण्ड हैं। इसमें प्रधानतः ऋग्वेद से सम्बद्ध होने के कारण ऋत्विजों के क्रियाकलापों, विशेषतः सोमयागों के होतृपक्ष का विशद् निरूपण हुआ है। साथ ही आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म आदि गहन विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। पञ्चक (पञ्चिका) क्रमानुसार इस ब्राह्मण में निरूपित विषय इस प्रकार हैं–

प्रथम तथा द्वितीय पञ्चिका में अग्निष्टोम याग (सोमयागों की प्रकृति), तृतीय चतुर्थ पञ्चिका में त्रिकाल सवन में प्रयुज्यमान शस्त्रों, अग्निष्टोम की अष्ट विकृतियों उक्थ्य, षोडशी तथा अतिरात्र यागों का निरूपण है। पञ्चम तथा षष्ठ पञ्चिका में क्रमशः द्वादशाह तथा सप्ताहाधिक अवधि तक चलने वाले सोमयागों से में होतादि ऋत्विज् के कृत्यों का विवेचन है। सप्तम पञ्चिका में राजसूय है। इसी प्रसङ्ग में ऐतरेय ब्राह्मण का प्राणस्वरूप शुनःशेप आख्यान भी वर्णित है। अष्टम पञ्चिका में ऐन्द्र महाभिषेक तथा चक्रवर्ती नरेशों के महाभिषेक का ऐतिहासिक वर्णन है। अन्तिम अध्याय में पुरोहित के राजनीतिक तथा धार्मिक महत्त्व का वर्णन है। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण का सोमयागों के नाना स्वरूपों का प्रकाशन करने के कारण विशेष महत्त्व है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम दश अध्याय आख्यानों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है– शुनः शेप आख्यान। यह आख्यान सौ ऋचाओं में वर्णित है। इसे 'हरिश्चन्द्र आख्यान' भी कहा जाता है। यह आख्यान ऐतरेय ब्राह्मण के 33वें अध्याय में वर्णित है। राजा के राज्याभिषेक के अवसर पर इसे सुनाये जाने का विधान था जिससे कि वह (राजा) किसी (देवता/मनुष्य) को दिये गये वचन (सङ्कल्प) को पूरा करना अपना प्रधान धर्म समझे। सङ्क्षेप में यह आख्यान इस प्रकार है–

शुनःशेप आख्यान – पुत्रहीन इक्ष्वाकुवंशीय राजा हरिश्चन्द्र को वरुण देवता के प्रसादस्वरूप इस शर्त पर पुत्रप्राप्ति हुई कि वह (राजा) उस पुत्र को उन्हें वापस सौंप देगा किन्तु मोहवश उसमें विलम्ब के फलस्वरूप गम्भीर रोग से वे पीड़ित हो गये। अन्त में राजा ने अजीगर्त ऋषि के पुत्र शुनःशेप को खरीदकर अपने पुत्र के स्थान पर उसकी बलि देने की व्यवस्था की। यज्ञ के ऋत्विजों विश्वामित्र, वसिष्ठ तथा जमदग्नि ने जब शुनःशेप की बलि देने से मना कर दिया तब पुनः अजीगर्त ही लोभवश अपने पुत्र की बलि देने को उद्यत हुये। बाद में देवताओं की स्तुति के फलस्वरूप शुनःशेप को मुक्ति मिली। उन्होंने अपने लोभी माता-पिता का परित्याग कर दिया तथा विश्वामित्र ने उन्हें पुत्ररूप में स्वीकर कर लिया जिससे शुनःशेप का नया नाम 'देवरात विश्वामित्र' पड़ा।

ऐतरेय ब्राह्मण में 33 देवताओं का वर्णन मिलता है–**'त्र्यस्त्रंशद्वै देवाः।'** इनमें प्रथम देवता हैं– अग्नि तथा परमदेवता हैं– विष्णु। शेष देवता इन दोनों के मध्य समाविष्ट हैं। इस प्रकार पुराणों में विष्णु को सर्वाधिक महिमाशाली देवता के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने का मूल सूत्र इसी ब्राह्मण में मिलता है।

एतरेय ब्राह्मण पर तीन भाष्य उपलब्ध हैं– 1. सायणप्रणीत भाष्य 2. षड्गुरुशिष्यप्रणीत सुखप्रदा लघु व्याख्या, 3. गोविन्दस्वामी कृत भाष्य।

2.3.2 शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण

ऋग्वेद का द्वितीय उपलब्ध ब्राह्मण शाङ्खायन है। यह ऋग्वेद की बाष्कल शाखा से सम्बद्ध है। इसका अपर नाम 'कौषीतकि ब्राह्मण' है। इस ब्राह्मण में 30 अध्याय तथा 227 खण्ड हैं। इसके प्रवचनकर्ता शाङ्खायन या कुषीतक ऋषि के पुत्र कौषीतक हैं।

ताण्ड्य ब्राह्मण में कौषीतकों को व्रात्यभावापन्नरूप में बताया गया है–'**कौषीतकानां न कश्चनाऽतिजिहीते यज्ञावकीर्णा हि।**' अतः उन्हें समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई। शाङ्खायन आरण्यक में प्राप्त वंश परम्परा के अनुसार विद्याक्रम से कौषीतक तथा शाङ्खायन में गुरु-शिष्य सम्बन्ध था। अतः शाङ्खायन को ही अन्तिमरूप से इस ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता मानना चाहिये। आचार्य शाङ्खायन ने ही अपने गुरु कौषीतक के नाम पर इसका नामकरण किया होगा, किन्तु परम्परा से इसका शाङ्खायन नाम भी सुरक्षित रहा। जैसा कि चरणव्यूह की महिदास कृत टीका के इस श्लोक से पुष्ट होता है–

'**उत्तरे गुर्जरे देशे वेदो बह्वृच ईरितः।**
कौषीतकि ब्राह्मणं च शाखा शाङ्खायनी स्थिता।।' (चरणव्यूह टीका)

यहाँ ब्राह्मण का नाम कौषीतकि कहा गया है, किन्तु शाखा शाङ्खायनी कही गयी है। शाङ्खायन ब्राह्मण का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें भी सोमयागों की प्रधानता है साथ ही इष्टियों तथा पशुयागों का भी प्रतिपादन हुआ है। इस ब्राह्मण में सर्वप्रथम अग्न्याधान, पुनः अग्निहोत्र, तदनन्तर पौर्णमास और सबसे अन्त में चातुर्मास्य का वर्णन है। इस प्रकार इस ब्राह्मण में यज्ञ का सम्पूर्ण विवरण मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण से विषय साम्य होते हुए भी शाङ्खायन ब्राह्मण का स्वतन्त्र महत्त्व अक्षुण्ण है। साथ ही ऐतरेय ब्राह्मण से अधिक प्राचीन है। इस ब्राह्मण से सम्बद्ध कोई भाष्य नहीं उपलब्ध होता है।

2.4 यजुर्वेदीय ब्राह्मण

यजुर्वेद के दो विभाग हैं– शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद। इनमें से शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध एकमात्र 'शतपथ ब्राह्मण' तथा कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध एकमात्र 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' उपलब्ध होता है।

2.4.1 शतपथ ब्राह्मण (शुक्लयजुर्वेदीय)

शतपथ ब्राह्मण, ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वाधिक विशालकाय ब्राह्मण है। "**शतं पन्थानो यत्र शतपथः तत्तुल्यो ग्रन्थः**"(गणरत्नमहोदधि पृ.117) अर्थात् इसका शतपथ यह नामकरण इसकी विशालता (100 अध्यायों) के कारण ही किया गया है। इसे 'वाजसनेय ब्राह्मण' भी कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता वाजसनेय याज्ञवल्क्य हैं। यह ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों शाखाओं पर उपलब्ध है। माध्यन्दिन ब्राह्मण में 14 काण्ड, सौ अध्याय, 438 ब्राह्मण तथा 7624 कण्डिकायें हैं, जबकि काण्व शतपथ ब्राह्मण में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 435 ब्राह्मण तथा 6806 कण्डिकायें हैं। यजुर्वेद की दोनों शाखाओं से सम्बद्ध इस ब्राह्मण में विषयगत साम्य है तथापि उपस्थापन क्रम में भेद है।

इसके 14 काण्डों में से नौ काण्डों में यज्ञ विवरण है। दसवें में अग्निरहस्य, ग्यारहवें काण्ड में अग्निचयनविषयक चर्चा, बारहवें में प्रायश्चित्त, तेरहवें में अश्वमेध नरमेधादि का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण का चौदहवाँ काण्ड आरण्यक है।

शतपथ ब्राह्मण का प्रधान विषय यागमीमांसा है। इसमें यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है–"**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**"(शत.ब्र.1.7.3.5)। इसमें सभी हविर्यागों का प्रकृतियाग अग्निहोत्र को बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण यज्ञों में हिंसा का निषेध करता है–'**अध्वरो वै यज्ञः**' (शत. ब्रा. 3.9.2.1)। इस ब्राह्मण में स्त्रियों के उत्तराधिकार को अस्वीकृत किया गया है, साथ ही कहा गया है कि नारी के बिना पुरुष अपूर्ण है तथा यज्ञ का अधिकारी नहीं होता। (शत.ब्रा. 5.1.6.11)। मनुष्यों द्वारा अनिवार्य रूप से किये जाने वाले पञ्च महायज्ञों (भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ) का परिचय भी इसी ब्राह्मण से प्राप्त होता है। महाभारत में वर्णित अनेक उपाख्यानों का मूल भी यही ब्राह्मण है।

शतपथ ब्राह्मण (काण्व शाखा) का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें ऋषि वंशावली का जो वर्णन है, वह विशेषतः गोतम वंश का है। शतपथ ब्राह्मण का षष्ठ काण्ड से लेकर दशम काण्ड तक का अंश 'शाण्डिल्य काण्ड' नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण वेदार्थ को समझने के लिये कुञ्जी स्वरूप है।

इस ब्राह्मण पर तीन प्रामाणिक भाष्य उपलब्ध होते हैं– 1. हरिस्वामीकृत भाष्य, 2. सायणकृत भाष्य, 3. कवीन्द्रसरस्वतीकृत भाष्य।

2.4.2 तैत्तिरीय ब्राह्मण (कृष्णयजुर्वेदीय)

तैत्तिरीय ब्राह्मण कृष्णयजुर्वेदीय शाखा पर अद्यावधि सम्पूर्णरूप से उपलब्ध होने वाला एकमात्र ब्राह्मण है। इसमें कृष्णयजुर्वेदीय काठक ब्राह्मण के कुछ अंश प्राप्त होते हैं, किन्तु स्वतन्त्ररूप में अद्यावधि ये अनुपलब्ध हैं। शतपथ ब्राह्मण के समान तैत्तिरीय ब्राह्मण का पाठ भी सस्वर मिलता है, जो इसकी प्राचीनता को प्रमाणित करता है। परम्परा से तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रवक्ता के रूप में वैशम्पायन के शिष्य तित्तिर की प्रसिद्धि है। भट्टभास्कर तैत्तिरीय ब्राह्मण के अन्तर्गत सम्मिलित काठकभाग (3.10-12) के प्रवचनकर्ता के रूप में 'काठक' को निर्दिष्ट करते हैं। परम्परानुसार यह शाखा आन्ध्रप्रदेश नर्मदा के दक्षिण आग्नेय दिशा में तथा गोदावरी के तटवर्ती प्रदेशों में प्रचलित रही है। सुप्रसिद्ध भाष्यकार सायण की अपनी यही शाखा थी। अतः उन्होंने ब्राह्मणों में सर्वप्रथम इसी ब्राह्मण पर अपना भाष्य रचा।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन काण्ड या अष्टक हैं। इन काण्डों में क्रमशः 8, 8 तथा 12 अध्याय हैं, जिनके अवान्तर खण्ड को 'अनुवाक्' कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में अग्न्याधान, गवामयन, वाजपेय, सोम नक्षत्रेष्टि तथा राजसूय यागों का वर्णन है। द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र, उपहोम, सौत्रामणि, बृहस्पति सव तथा वैश्यसवादि विविध सवों का वर्णन है। प्रत्येक अनुष्ठान में उपयोगी ऋङ्मन्त्रों का भी यहाँ उल्लेख है। इस काण्ड में अनेक मन्त्रों में ऋग्वेद में उठने वाले प्रश्नों का भी उत्तर मिलता है। साथ ही उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म तत्त्व का सङ्केत यहाँ विशद् रूप में मिलता है। इतना होते हुये भी यहाँ यज्ञ की भावना प्रधान है। यहाँ यज्ञ की वेदी को पृथ्वी का परम अन्त तथा मध्य कहा गया है–'**वेदिमाहुः परमन्तं पृथिव्याः वेदिमाहुर्भुवनस्य नाभिम्**' (तै.ब्रा. 2.7.4-10)। तृतीय काण्ड में नक्षत्रेष्टि का विस्तृत वर्णन है। चतुर्थ प्रपाठक में पुरुषमेध के लिये उपयुक्त पशुओं का वर्णन है। इसी काण्ड

के अन्तिम तीन प्रपाठक 'काठक' नाम से भी व्यवहृत होते हैं। सम्भवतः यह अंश काठकशाखीय ब्राह्मण का हो, जिसे किसी उद्‌देश्य विशेष से यहाँ सङ्कलित किया गया हो।

कठोपनिषद् में वर्णित नाचिकेताग्नि, उसकी वेदि, चयन, उपासनादि द्वारा मोक्ष प्राप्ति का प्रथम सूत्र इसी ब्राह्मण में प्राप्त होता है। पुराणों में उल्लिखित वराहावतार का स्पष्ट सङ्केत इसी ब्राह्मण में प्रथमतः उपलब्ध होता है। इस ब्राह्मण में विविध यज्ञानुष्ठानों में गोदक्षिणा का विधान बताया गया है। साथ ही चतुर्वर्णों और आश्रमों का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें **'मूर्तिस्तथा वैश्यस्य उत्पत्तिः ऋग्वेदात्, गतिस्तथा क्षत्रियस्योत्पत्तिः यजुर्वेदात्, ज्योतिस्तथा ब्राह्मणस्योत्पत्तिः सामवेदात्'** कहकर सामवेद का ब्राह्मण से सम्बन्ध जोड़ते हुये उसे (सामवेद को) वेदों में शीर्षस्थ रखा गया है। इस ब्राह्मण में अनेक मन्त्र ऋग्वेद से उद्‌धृत किये गये हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण पर सायण तथा भट्टभास्कर प्रणीत भाष्य प्राप्त होता है।

2.5 सामवेदीय ब्राह्मण

सामवेद के ब्राह्मणों की सङ्ख्या अन्य वेदों की तुलना में सर्वाधिक है। कुमारिलभट्ट का कथन है कि सामवेद (कौथुम) के आठ ब्राह्मण ग्रन्थ हैं –

'ब्राह्मणानि हि यान्यष्टौ सरहस्यान्यधीयते। छन्दोगास्तेषु सर्वेषु न कश्चिन्नियतः स्वरः।।' (तन्त्रवार्तिक 1.3.12)

सायणाचार्य का भी यही मन्तव्य है–**'अष्टो हि ब्राह्मणग्रन्थाः प्रौढं ब्राह्मणमादिमम् षड्विंशाख्यं द्वितीयं स्यात् ततः सामविधिर्भवेत्। आर्षेयं देवताध्यायो भवेदुपनिषत् ततः। संहितोपनिषद् वंशो ग्रन्थाः अष्टावितीरितः।'** (साम.वि.ब्रा.भाष्य, उपक्रमणिका) अर्थात् सामवेदीय आठ ब्राह्मण हैं– ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्यायः, उपनिषत्, संहितोपनिषत् तथा वंशब्राह्मण।

सामवेदीय इन आठ ब्राह्मणों का वर्गीकरण पारम्परिक रूप से दो वर्गों में किया जाता है– 1.ब्राह्मण, 2.अनुब्राह्मण। इनमें से ब्राह्मण ग्रन्थ वे हैं, जो ब्राह्मण के परम्परागत लक्षण का पालन करते हों। अनुब्राह्मण उन्हें कहा जाता है जो ब्राह्मण के सदृश हों। अनुब्राह्मण शब्द का उल्लेख पाणिनीय अष्टाध्यायी में भी है। जिसका अभिप्राय है– ब्राह्मण सदृश ग्रन्थ। विद्वानों के अनुसार सायण निर्दिष्ट आठ ब्राह्मणों में से ताण्ड्य तथा षड्विंश ब्राह्मण कोटि के हैं शेष छः अनुब्राह्मण की कोटि में आते हैं।

इन आठ ब्राह्मणों के अतिरिक्त सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध भी तीन ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं– 1. जैमिनीय ब्राह्मण, 2. जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण, 3. जैमनीयोपनिषद् ब्राह्मण। सामवेदीय इन ग्यारह ब्राह्मणों का परिचय अग्रलिखित है–

2.5.1 ताण्ड्य ब्राह्मण

सामवेदीय ब्राह्मणों में सर्वाधिक विशालकाय होने के कारण ताण्ड्य ब्राह्मण को 'प्रौढ ब्राह्मण' सामवेद की तण्डि शाखा से सम्बद्ध होने से इसे 'ताण्ड्य ब्राह्मण' तथा पच्चीस अध्यायों में विभक्त होने के कारण इसे 'पञ्चविंश ब्राह्मण' के नाम से भी जाना जाता है। यज्ञानुष्ठानों में उद्‌गाता के कृत्यों की विपुल मीमांसा होने से सामवेदीय ब्राह्मणों में इसका नितान्त महत्त्व है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण का प्रधान प्रतिपाद्य सोमयाग है। अग्निष्टोमसंस्थ ज्योतिष्टोम से लेकर सहस्र संवत्सर साध्य सोमयागों का ही इसमें (25 अध्यायों में) मुख्यरूप से विधान किया गया है। इसके अन्तर्गत इन यागों के अङ्गभूत स्तोत्र, स्तोम और उनकी विष्टुतियों के प्रकार तथा स्तोम भाग की भी विशद् विवेचना की गयी है। अध्यायक्रमानुसार ताण्ड्य महाब्राह्मण की विषय-वस्तु इस प्रकार है –

प्रथम अध्याय में उद्गाता के लिये पठनीय यजुष् मन्त्रों का, द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों में त्रिवृत् पञ्चदशादि स्तोमों की विष्टुतियाँ, चतुर्थ तथा पञ्चम अध्याय में समस्त सत्रयागों के प्रकृतिभूत गवामयन की मीमांसा की गयी है। षष्ठ अध्याय से नवम अध्याय (12वें खण्ड तक) ज्योतिष्टोम, उक्थ्य तथा अतिरात्र संस्थयागों और प्रायश्चित्त की विधियाँ वर्णित हैं। दश से पञ्चदश अध्याय तक द्वादशाह यागों का वर्णन है। वहीं षोडश से नवदश अध्यायपर्यन्त विविध एकाह याग, विंश अध्याय से द्वाविंश अध्यायों में अहीनयाग, त्रयोविंश से पञ्चविंश अध्याय तक सत्रयागों का वर्णन है।

ताण्ड्य ब्राह्मण में कुल 178 सोमयागों का वर्णन है। वैदिक वाङ्मय में इस ब्राह्मण का निम्नलिखित विशेषताओं के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है–

1) इसमें समस्त सोमयागों (एकाह से लेकर सत्रयाग तक) के औद्गात्र पक्ष का साङ्गोपाङ्ग विस्तृत वर्णन किया गया है।
2) सामगान की प्रक्रिया, विशेषतः सोमयागों में ऊह तथा ऊह्यगान किस प्रकार गाये जाते थे? इसके परिज्ञान के लिये ताण्ड्य ब्राह्मण अत्यन्त प्रामाणिक आकरग्रन्थ हैं।
3) इसमें विविध प्रकार के साम, उनके नामकरण से सम्बद्ध आख्यायिकायें तथा निरुक्तियाँ भी पुष्कल परिमाण में प्राप्त होती हैं।
4) व्रात्यों को आर्य की श्रेणी में लाने वाले व्रात्य यज्ञ का विवरण इसी ब्राह्मण में आता है। प्रवास करने वाले आचारहीन आर्य ही 'व्रात्य' कहलाते हैं। सायण ने इनके चार प्रकार बताये हैं जिनकी दोषमुक्ति के लिये विविध व्रात्ययागों का विधान इसमें बताया गया है।
5) सांस्कृतिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्त्व है। सरस्वती नदी के विनशन (लोपस्थल), पुनः उद्गम स्थल नैमिषारण्य, निषाद नाम जातिविशेष का ज्ञान इसी ब्राह्मण से होता है।
6) जैमिनीय ब्राह्मण भी यद्यपि सामवेदीयब्राह्मण है तथापि उसकी अपेक्षा यह ब्राह्मण अधिक सुव्यवस्थित है।

सायणाचार्य इसके प्रसिद्ध भाष्यकार तथा हरिस्वामी प्रधान वृत्तिकार हैं।

2.5.2 षड्विंश ब्राह्मण

षड्विंश ब्राह्मण सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बद्ध द्वितीय महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है। यह ब्राह्मण पञ्चविंश ब्राह्मण (ताण्ड्य ब्राह्मण) का ही परिशिष्ट भाग है। सायण ने इसे 'ताण्डकशेष' ब्राह्मण भी कहा है क्योंकि ताण्ड्य ब्राह्मण में सोमयागों से सम्बद्ध न कहे गये विषयों का निरूपण इस ब्राह्मण में किया गया है।

इस ब्राह्मण में छः अध्याय हैं। प्रति अध्याय अवान्तर खण्डों में विभक्त हैं। इसके पाँच अध्यायों में इष्टि प्राप्ति के साधनभूत कर्मों का निरूपण होने से षष्ठ अध्याय की

विषय-वस्तु से इनका भेद है। षष्ठ अध्याय में अनिष्ट परिहार के साधनों का निरूपण है।अध्यायक्रमानुसार विषय-वस्तु का विवरण इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय में सुब्रह्मण्या-निगद के गौरव, त्रिविध सवनों के साम, छन्दों का निरूपण, वशिष्ठगोत्रोत्पन्न ब्राह्मम् की ही 'ब्रह्म' पद पर प्रतिष्ठा, ज्ञाताज्ञात त्रुटियों के प्रायश्चित्त कर्म अर्थवादपूर्वक चरु के निर्वाप का विधान वर्णित है।

द्वितीय अध्याय में अग्निष्टोम के अन्तर्गत बहिष्पवमान के रेतस्या, धूरगानों का विधान होतादि ऋत्विजों तथा होत्राच्छंसी इत्यादि उपऋत्विजों के याग सम्बन्धी प्रकीर्ण धर्मों आदि का निरूपण है।

तृतीय अध्याय में यज्ञ में की गयी त्रुटियों से यजमान के प्रभावित होने के कारण होतादि ऋत्विजों के कर्तव्यकर्म के पूर्णज्ञान का निर्देश, अभिचारयाग (जो कि इस ब्राह्मण का वैशिष्ट्य है) तथा विविध विष्टुतियों का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय के अवान्तर छः खण्डों में व्यूढद्वादशाहयाग के धर्मों, श्येनयाग नामक अभिचारयाग तथा उसके स्तोमों का निरूपण त्रिवृदग्निष्टोम संदंशयागों, वज्रयागादि में गीयमान सामों तथा वैश्वदेव नामक त्रयोदशाह का विशद् विवेचन है। पञ्चम अध्याय के अवान्तर 7 खण्डों में अग्निहोत्र की ज्योतिष्टोम याग से तुलना, यजमान के पात्र से आज्य गिर जाने पर प्रायश्चित्त विधान, औदुम्बरी यज्ञयूप का वैशिष्ट्य निरूपण, सन्ध्योपासनाविषयक विवरण, चन्द्रमा के घटने-बढ़ने, उनकी कलाओं स्वाहादि देवता की उत्पत्ति आदि वर्णित हैं। इसके अन्तर्गत यह भी बताया गया है कि पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक ये सोमपान के तीन पात्र हैं। शुक्ल पक्ष में देवता सोमपान की दीक्षा लेते हैं तथा कृष्ण पक्ष में उसका पान करते हैं। चन्द्रमा की 16 कलाओं में से 15 कलायें उक्त पात्रों के द्वारा देवताओं के काम आ जाती हैं तथा 16वीं कला औषधियों में प्रविष्ट हो जाती है।

षड्विंश ब्राह्मण का षष्ठ अध्याय पूर्वोक्त पाँच अध्यायों से सर्वथा विलक्षण है। इस अध्याय में अद्भुत कर्मों, अनिष्टों अपशकुनों, भूकम्पादि नाना उत्पातों तथा उनकी शान्तिविषयक अनेक विधानों का वर्णन है। अतः षड्विंश ब्राह्मण के इस अध्याय की 'अद्भुत ब्राह्मण' के रूप में स्वतन्त्र मान्यता भी है।

षड्विंश ब्राह्मण श्रौतयागों के साथ ही लोकविश्वास के आधार पर समानान्तर चलने वाले धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध आनुष्ठानिक कृत्यों का भी श्रौतस्वरूप में ही प्रस्तावक है। आख्यानों की दृष्टि से इसमें 24 आख्यायिकायें हैं। पुराणों में पल्लवित इन्द्र-अहल्या विषयक आख्यान का मूलस्रोत षड्विंश ब्राह्मण के यही आख्यान हैं।

2.5.3 सामविधान ब्राह्मण

सामविधान ब्राह्मण का सामवेदीय ब्राह्मणों के अन्तर्गत अत्यन्त विशिष्ट स्थान है। इस ब्राह्मण का विषय ताण्ड्य तथा षड्विंश ब्राह्मण से नितान्त भिन्न है। इसमें श्रौतयाग के अतिरिक्त जादू-टोना, प्रायश्चित्त, प्रयोग, कृच्छ्रादिव्रत, काम्ययाग तथा विभिन्न लौकिक प्रयोजनानुवर्ती अभिचारकर्मादिविषयों का प्रधान रूप से निरूपण मिलता है।

सामविधान ब्राह्मण तीन प्रपाठकों तथा 24 अनुवाकों में विभक्त है। प्रपाठक क्रमानुसार इसकी विषय-वस्तु इस प्रकार है। प्रथम प्रपाठक में प्रजापति की उत्पत्ति, उनके द्वारा भौतिक सृष्टि, सामप्रशंसा, निर्वचन, सामस्वरों के देवता, देवों के निमित्त यज्ञ, यज्ञ के अनधिकारियों के लिये स्वाध्याय तथा तप का विधान, कृच्छ्र अतिकृच्छ्रव्रत, सौत्रामणी आदि प्रयोग तथा प्रायश्चित्तों का विधान है। इस प्रकार पुराणों में वर्णित व्रतों का मूल

सामविधान ब्राह्मण के इस प्रपाठक में सर्वप्रथम मिलता है, जैसे— किसी मन्त्र को जल में कमर तक खड़े होकर अपने विशेष फल की प्राप्ति आदि। ये विषय कालान्तर में धर्मशास्त्रों की भी विशेष रूप से पूर्वपीठिका बने।

द्वितीय प्रपाठक में किसी शत्रु को गाँव से भगाने के लिये चिताभस्म को चौराहे तथा शत्रु के घर या बिस्तर पर फेंकने का, सुवर्ण प्राप्ति के लिये मणिभद्र (यक्षविशेष) की मांसबलि तथा सामगायन के साथ पूजा का विधान, देवताओं की शान्ति हेतु सामविधान, राजयक्ष्मा (भयानक रोग) को दूर करने तथा दीर्घायु, सुन्दर पुत्र प्राप्ति से सम्बद्ध नाना प्रयोगों का वर्णन है।

तृतीय प्रपाठक में ऐश्वर्य, नवीन गृह में प्रवेश, आयुष्य प्राप्ति के लिये नाना अनुष्ठानों का सामगान सहित वर्णन है, साथ ही भूतप्रेत, गन्धर्व, अप्सरा, देवताओं के प्रत्यक्षीकरण के लिये सामों का प्रयोग सम्बन्धी विधान है। श्रुतिनिगादी की सिद्धिप्राप्ति के लिये यहाँ सामगान का विधान है। श्रुतिनिगादी उसे कहते हैं, जो किसी मन्त्र के मात्र एकबार श्रवण से ही उसका पाठ करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार सामविधान ब्राह्मण धर्मसूत्रों में प्रतिपादित अनेक विषयों की पूर्वपीठिका है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सामविधान ब्राह्मण के महत्त्व के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

1) यज्ञविषयक दृष्टिकोण के विकास क्रम को इसमें सरलता से देखा जा सकता है। यज्ञ का द्रव्यात्मक रूप, जिसमें प्रचुर धनद्रव्यादि की आवश्यकता होती है, शनैः शनैः सरल स्वरूप लेते दिखाई देते हैं। जप यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ के रूप में यज्ञ का जो उत्तरोत्तर विकसित रूप आरण्यकों तथा उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है, उसका मूल बिन्दु सामविधान ब्राह्मण में निहित है।

2) सामविधान ब्राह्मण में उन लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिये मात्र सामविधान का विधान किया गया है, अन्यत्र जिनके लिये प्रचुर व्यय तथा दीर्घकालसाध्य यागों का विधान किया गया है।

3) इसमें सामगान को सृष्टि के लिये जीवन साधन माना गया है।

4) देवशास्त्रीय दृष्टि से भी इसमें परम्परा से भिन्न नवीन तथ्यों का उद्घाटन किया गया है, जैसे— धन्वन्तरि, जो पुराणों में समुद्रमन्थन से उद्भूत तथा आयुर्वेद के प्रवर्तक माने गये हैं, उन्हें यहाँ वरुण के साथ समीकृत किया गया है— '**वरुणाय धन्वन्तरय**' (सा.वि.ब्रा. 1.3.8)। इसी प्रकार विनायक तथा स्कन्द का भी देवों के मध्य निर्देश मिलता है।

5) श्रौत तथा तान्त्रिक विधिविधानों (अभिचारों) का समन्वय तथा उस निमित्त साम का विधान भी इसका वैशिष्ट्य है।

6) इसमें तान्त्रिक-अभिचारों, विधि-विधानों की सिद्धि के लिये कतिपय ऐसे मन्त्र प्रतीक आये हैं जो सामवेद संहिता में नहीं प्राप्त होते।

सामविधान ब्राह्मण पर सायण तथा भरतस्वामी प्रणीत भाष्य उपलब्ध होता है।

2.5.4 आर्षेय ब्राह्मण

सामवेदीय ब्राह्मणों में आर्षेय ब्राह्मण का चतुर्थ स्थान है। इसमें तीन प्रपाठक तथा 88 खण्ड हैं। इस ब्राह्मण में सामगान के प्रसिद्ध विविध नामान्तरों का सम्बन्ध विविध (गानकर्ता) ऋषियों से सम्बद्ध किये जाने के कारण इसे 'आर्षेय ब्राह्मण' कहा जाता है।

यह ब्राह्मण सामवेद के लिये आर्षानुक्रमणी स्वरूप है। इस ब्राह्मण की रचना सूत्र शैली में हुई है। इसमें सामगायन के प्रथम प्रचारक ऋषियों, उनके गोत्रादि का विशद् वर्णन है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व है।

आर्षेय ब्राह्मण में मन्त्रादि से सम्बद्ध ऋषिगोत्रादि के ज्ञान को आवश्यक बताते हुए उसे स्वर्ग, यश तथा समृद्धि आदि फलों का साधन माना गया है –

"ऋषीणां नामधेयगोत्रोपधारणम्। स्वर्ग्यं यशस्यं धन्यं पुण्यं पुत्र्यं पशव्यं ब्रह्मवर्चस्यं स्मार्त्तमायुष्यम्।" (आ.ब्रा.1.1.1.2)

2.5.5 देवताध्याय ब्राह्मण

आकार में अत्यन्त लघुकाय इस ब्राह्मण में चार खण्ड हैं। इसके प्रथम खण्ड में देवनामों का ही विविध सामों के सन्दर्भ में सङ्कलन है। द्वितीय खण्ड में छन्दों के देवताओं और वर्णों का निरूपण हुआ है। तृतीय काण्ड में सामाश्रित छन्दों के नाम की निरुक्तियाँ वर्णित हैं तथा चतुर्थ काण्ड में गायत्रसाम की आधारभूत सावित्री के विविध अङ्गों की विविधदेवरूपता का निरूपण किया गया है। यह ब्राह्मण भी सूत्रशैली में रचा गया है। इस ब्राह्मण में सामगानों के सूक्तों तथा ऋचाओं का नहीं, अपितु देवताओं के निर्णय की प्रक्रिया का कथन है।

2.5.6 उपनिषद् ब्राह्मण

उपनिषद् ब्राह्मण का दूसरा नाम छान्दोग्य ब्राह्मण भी है। इसमें 10 प्रपाठक हैं। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं– 1. मन्त्र ब्राह्मण, 2. छान्दोग्योपनिषद्। मन्त्र तथा उपनिषद् दोनों भागों को मिलाकर एक पूर्ण ग्रन्थ बन जाता है।

प्रथम भाग 'मन्त्र ब्राह्मण' में 2 प्रपाठक हैं। प्रत्येक प्रपाठक 8-8 खण्डों में विभाजित है। इसमें गृह्यसंस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का सङ्ग्रह है जिन्हें गोभिल तथा खादिर गृह्यसूत्रों में भिन्न-भिन्न संस्कारों के अवसर पर प्रयुक्त किया गया है। इसमें कुल 268 गृह्यमन्त्र हैं।

इस मन्त्र ब्राह्मण भाग के अतिरिक्त अन्तिम 8 प्रपाठकों में छान्दोग्योपनिषद् है। इसमें तत्त्वज्ञान, तदुपयोगी कर्म तथा विविध उपासनाओं का विशद् वर्णन है। उपनिषद् ब्राह्मण पूर्णतः सामवेद का कौथुमशाखीय ब्राह्मण है।

2.5.7 संहितोपनिषद् ब्राह्मण

'संहितोपनिषद्' शब्द में प्रयुक्त 'संहिता' शब्द 'मन्त्रों के सङ्ग्रह' का पर्याय नहीं है, अपितु 'संहिता' शब्द का तात्पर्य ऐसे 'सामगान' से है, जिसका गान विशेष स्वरमण्डल से अनवरतरूप से किया जाता हो, जैसा कि सायण का कथन है–**''सामवेदस्य गीतिषु समाख्या''इति न्यायेन केवलं गानात्मकत्वात् पदाभावेन प्रसिद्धा संहिता यद्यपि न भवति तथापि तस्मिन् साम्नो सप्तस्वरा भवन्ति। क्रुष्ट प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ मन्द्रातिस्वार्या इति। तथा मन्द्रमध्यमताराणीति त्रीणि वाचः स्थानानि भवन्ति। एतेषां यः सन्निकर्षः सा संहिता।"** (सं.ब्रा.भाष्यभूमिका)

यह ब्राह्मण पाँच खण्डों में विभक्त है। इसमें सामगान से उत्पन्न होने वाले प्रभावों का वर्णन है तथा साम, सामयोनि मन्त्रों तथा पदों के परस्पर सम्बन्ध का भी विवेचन किया गया है। यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में इस ब्राह्मण के तृतीय खण्ड से **'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम'** यह वचन उद्धृत किया है। इससे संहितोपनिषद् ब्राह्मण की

प्रामाणिकता तथा प्रसिद्धि का तो सङ्केत मिलता ही है, साथ में निरुक्त से इसकी प्राचीनता भी सिद्ध होती है।

संहितोपनिषद् पर दो भाष्य उपलब्ध होते हैं– सायणकृत 'वेदार्थप्रकाश' तथा द्विजराजकृत भाष्य।

2.5.8 वंश ब्राह्मण

इस अतिलघ्वाकार सामवेदीय ब्राह्मण में तीन खण्ड हैं। इसमें सामवेद के उन आचार्यों की वंश-परम्परा दी गयी है, जिनसे सामवेद का अध्ययनक्रम अग्रसर हुआ है। इस ब्राह्मण में प्राप्त साक्ष्यानुसार सामवेद की परम्परा वस्तुतः स्वयम्भू ब्रह्मा से आरम्भ हुई जो विविध देवताओं के माध्यम से कश्यप ऋषि तक पहुँची तथा कश्यप ऋषि से प्रारम्भ इसकी परम्परा शर्वदत्त गार्ग्य तक पहुँची। ऋषि आचार्यों की इस परम्परा में गौतमराध से एक अन्य धारा निःसृत हुई, जो नयन तक जाती है।

इस ब्राह्मण के अब तक चार संस्करण प्रकाशित हुये हैं।

2.5.9 जैमिनीय ब्राह्मण

सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बद्ध तीन ब्राह्मणों में जैमिनीय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण के समान विपुलकाय तथा यागानुष्ठान के रहस्य को जानने के लिये नितान्त उपादेय तथा महत्त्वपूर्ण है। यह ब्राह्मण सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होता है। जैमिनीय ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में 360 खण्ड है। द्वितीय भाग में 437 तथा तृतीय भाग में 385 खण्ड है अर्थात् कुल खण्डों की सङ्ख्या 1182 है।

जैमिनीय ब्राह्मण के आदि तथा अन्त में जैमिनि का स्तवन किया गया है। सामवेद की इसी शाखा का जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण भी इस महान् ब्राह्मण ग्रन्थ का अंशमात्र है जो 'गायत्र्युपनिषद्' के नाम से विख्यात है।

जैमिनीय ब्राह्मण तथा ताण्ड्य ब्राह्मण की विषय सामग्री में अत्यधिक समानता है, दोनों में ही सोमयागगत औद्गात्रतन्त्रादि का निरूपण है, किन्तु दोनों में वैषम्य यह है कि जैमिनीय ब्राह्मण में उन्हीं विषयों का विस्तार से वर्णन है, जबकि ताण्ड्य ब्राह्मण में अपेक्षाकृत कम विस्तार है।

लोक में एक प्रसिद्ध सूक्ति "दीवारों के भी कान होते हैं। अतः धीरे बोलो।" इसी जैमिनीय ब्राह्मण में प्राप्त होती है–**'मोच्चौरिति होवाच कर्णिनी वै भूमिरिति।'**

जैमिनिशाखीय ब्राह्मणों की भाषा की विशेषता यह है कि इसमें ऋग्वेद के समान 'ळ' व्यञ्जन सुरक्षित है।

2.5.10 जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण

जिस प्रकार जैमिनीय ब्राह्मण तथा कौथुम शाखीय ब्राह्मणों की सामग्री में समानता है, ठीक उसी प्रकार जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण की वर्ण्य सामग्री भी कौथुमशाखीय आर्षेय ब्राह्मण के समकक्ष है। कौथुमशाखीय आर्षेय ब्राह्मण के समान इसमें भी प्रारम्भ के प्रथम दो वाक्यों को छोड़कर स्वाध्याय तथा यज्ञ की दृष्टि से ऋषि, छन्द तथा देवता के ज्ञान पर बल दिया गया है। ग्रामगेय गानों के ऋषि निरूपण में अध्यायों और खण्डों की व्यवस्था और विन्यास भी प्रायः समान है। कहीं-कहीं अवान्तर भेद के कारण गानक्रम में भिन्नता है। यह ब्राह्मण कौथुमशाखीय आर्षेय ब्राह्मण से विषयगत साम्य रखते हुये भी अपेक्षाकृत उससे सङ्क्षिप्त है।

2.5.11 जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में चार अध्याय हैं। अध्यायों का अवान्तर विभाजन अनुवाक् तथा खण्डों में है। इस ब्राह्मण का विशेष महत्त्व पुरातन भाषा, शब्दावली वैयाकरणिक रूपों और ऐसे ऐतिहासिक तथा देवशास्त्रीय आख्यानों के कारण हैं, जिसमें बहुविध प्राचीन विश्वास तथा रीतियाँ सुरक्षित हैं। इस ब्राह्मण को कौथुमशाखीय सभी ब्राह्मणों से प्राचीन होने के कारण प्राचीन ब्राह्मणों की श्रेणी में रखा जाता है। इस ब्राह्मण में कुछ ऐसी प्राचीन धार्मिक मान्यतायें निहित हैं, जिनका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता, उदाहरण के लिये– मृत व्यक्तियों का पुनः प्राकट्य तथा प्रेतात्मा द्वारा उन व्यक्तियों का मार्गनिर्देशन करना, जो रहस्यात्मक सिद्धियों की प्राप्ति के लिये साधकों की खोज में रत हैं। निशीथ वेला में श्मशान साधना से सम्बद्ध उन कृत्यों का भी इसमें उल्लेख है, जो अतिमानवीय शक्ति को प्राप्त करने के लिये चिता भस्म के समीप किये जाते हैं।

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में ओङ्कार हिङ्कार की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है। इसमें कहा गया है कि यही वह अक्षर है जिससे ऊपर कोई नहीं उठ सकता। यही ओम् परम ज्ञान तथा बुद्धि का आदि कारण है। इसी से अष्टाक्षरा गायत्री की उत्पत्ति हुई। गायत्री से ही प्रजापति को तथा इसी से अन्य देवताओं और ऋषियों को अमरत्व की प्राप्ति हुई–'**तदेतदमृतं गायत्रम्। एतेन वे प्रजापतिरमृतत्वमगच्छत्। एतेन देवाः। एतेनर्षयः।**' (जैमि. उ. ब्रा. 3.7.3.1)

जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण जैमिनीयब्राह्मण का ही एक अंश रूप है। अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के समान इस ब्राह्मण में यागविधियों का विशेष उल्लेख नहीं है। इसमें वर्णित विषय-वस्तु आरण्यक तथा उपनिषदों के अधिक समीप हैं।

इसका समापन–"**सैषा शाट्यायनी गायत्रस्योपनिषद् एवमुपासितव्या।**" इस कथन से हुआ है। तदनन्तर केनोपनिषद् का आरम्भ होता है। यह उपनिषद् 'गायत्र्युपनिषद्' के नाम से भी विख्यात है।

2.6 अथर्ववेदीय ब्राह्मण

अथर्ववेद से सम्बद्ध एकमात्र ब्राह्मण गोपथ ब्राह्मण है। इसका परिचय इस प्रकार है–

2.6.1 गोपथ ब्राह्मण

गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा से सम्बद्ध ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता गोपथ ऋषि हैं। गोपथ ब्राह्मण के दो भाग हैं– 1. पूर्वगोपथ, 2. उत्तरगोपथ।

पूर्वगोपथ में 5 प्रपाठक तथा उत्तरगोपथ में 6 प्रपाठक हैं। इन प्रपाठकों का विभाजन 258 कण्डिकाओं में किया गया है। यह ब्राह्मण, 'ब्राह्मणसाहित्य' में सबसे अर्वाचीन माना जाता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से पूर्वगोपथ के पाँच प्रपाठकों में क्रमशः ओङ्कार तथा गायत्री की महिमा, ब्रह्मचारियों के विशिष्ट नियम, यज्ञ, ऋत्विजों के क्रिया-कलाप, दीक्षा तथा संवत्सर का वर्णन है। तदनन्तर अश्वमेध, पुरुषमेध तथा अग्निष्टोमादि यज्ञों का भी निरूपण किया गया है। उत्तरगोपथ में विविध यज्ञों के साथ-साथ आख्यायिकाओं का भी सन्निवेश है।

गोपथ ब्राह्मण कतिपय नवीन विचारधाराओं के कारण भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है जैसे– ब्रह्मा द्वारा कमल के ऊपर ब्रह्मा का उदय, प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण से पूर्व

ओङ्कार का उच्चारण किसी अनुष्ठान का आरम्भ करने से पूर्व तीन बार आचमन करना इत्यादि।

इसके अतिरिक्त गोपथ ब्राह्मण के अन्य वैशिष्ट्य भी हैं–

1) इसमें (गोपथ ब्राह्मण में) ऋग्वेदादि प्रसिद्ध चार वेदों के अतिरिक्त पाँच अन्य वेदों का भी परिचय मिलता है– सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद तथा पुराणवेद।

2) ऋग्वेद में वरुण आकाश के देवता हैं किन्तु धीरे-धीरे वे जल के देवता के रूप में कैसे प्रतिष्ठित हुए? इसका विवरण गोपथ ब्राह्मण में मिलता है।

3) अथर्ववेद तथा उससे सम्बद्ध भृगु, अङ्गिरा तथा अथर्वा प्रभृति ऋषियों के आविर्भाव पर विशिष्टरूप से प्रकाश पड़ता है।

4) निर्वचन की दृष्टि से अथर्ववेद के निर्वचन महत्त्वपूर्ण हैं। निरुक्त में भी गोपथ ब्राह्मण से अनेक निर्वचनों को उद्धृत किया गया है, जैसे– प्रजापालन के कारण 'प्रजापति', भरण करने के कारण 'भृगु' शब्दों का प्रयोग स्पष्ट किया गया है।

5) व्याकरण की उस शब्दावली, जिसका विकास सूत्रकाल में हुआ, का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में मिलता है। धातु, प्रातिपदिक, विभक्ति, प्रत्यय, स्थानानुप्रदानादि कुछ ऐसे ही शब्द हैं। अव्यय की वही परिभाषा यहाँ मिलती है जो अद्यावधि प्रचलित है।

6) गोपथ ब्राह्मण का ऐतिहासिक तथा भौगोलिक महत्त्व भी है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, गौतम, भारद्वाज, अगस्त्यादि ऋषियों के आश्रम के रूप में, विपाशा नदी, वसिष्ठ शिला, अगस्त्य तीर्थ आदि का उल्लेख यहीं मिलता है।

गोपथ ब्राह्मण वेदान्तश्रेणी का ब्राह्मण माना जाता है।

2.7 सारांश

वेदों का वह भाग, जिसमें वैदिक यज्ञों के लिये वेद-मन्त्रों के विधानादि की विस्तृत व्याख्या की गयी है, 'ब्राह्मण' ग्रन्थ कहलाते हैं। 'ब्रह्म' अर्थात् यज्ञविषयक प्रतिपादक होने से इनको 'ब्राह्मण' कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रणयन ब्रह्मावर्त प्रदेश में लगभग 3000 ई.पू. से 2000 ई.पू. के मध्य हुआ। ब्राह्मणों का प्रधान प्रतिपाद्य विषय यज्ञों की सर्वाङ्गपूर्ण मीमांसा करना है। इसकी प्रतिष्ठा के वहाँ दो आधार हैं– विधि तथा अर्थवाद। विधियाँ दश हैं– हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण-कल्पना, उपमान। इन दश विधियों में भी प्रधानता विधियों की ही है, शेष जो अन्य प्रकार हैं, वे विधियों के ही पोषक हैं। उन्हें मीमांसकों ने 'अर्थवाद' कहा है। विषय विवेचन की दृष्टि से ब्राह्मणों के प्रधानतः सात विषय हैं– विधि, विनियोग, हेतु, अर्थवाद, निर्वचन, आख्यान तथा उपनिषद् भाग।

वैदिक संहितायें चार हैं– ऋक् संहिता, यजुष् संहिता, साम संहिता तथा अथर्व संहिता। इन संहिताओं की विविध शाखाओं पर ऋषियों द्वारा अनेक ब्राह्मण रचे गये। इनमें अनेक ब्राह्मण अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध ब्राह्मणों में संहिताक्रम से सर्वप्रथम ऋग्वेद संहिता पर दो ब्राह्मण उपलब्ध होते हैं– 1. ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बद्ध ऐतरेय ब्राह्मण (प्रवचनकर्ता महिदास ऐतरेय) 2. ऋग्वेद की वाष्कल शाखा से सम्बद्ध शाङ्खायन ब्राह्मण (कौषीतकि ब्राह्मण)। इनमें सोमयागों से सम्बद्ध प्रायः सम्पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में शुक्ल यजुर्वेद पर केवल एक ही ब्राह्मण उपलब्ध होता है– शतपथ ब्राह्मण। इसका सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की काण्व तथा माध्यन्दिन

दोनों शाखाओं से है तथा सभी ब्राह्मणों में सबसे विशालकाय ब्राह्मण है, जिसमें यज्ञ से जुड़े रहस्यात्मक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध भी केवल एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है– तैत्तिरीय ब्राह्मण। इस ब्राह्मण में वर्णाश्रम व्यवस्था से सम्बन्धित विवरण भी मिलता है। सामवेद की कौथुमीय, जैमिनीय तथा राणायनीय शाखाओं में से केवल कौथुमीय तथा जैमिनीय शाखाओं पर ही ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम कौथुमीय शाखा सम्बद्ध 8 ब्राह्मण उपलब्ध होते हैं– ताण्ड्य, षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद्, संहितोपनिषद् तथा वंशब्राह्मण। इनमें ताण्ड्य तथा षड्विंश 'ब्राह्मण कोटि' के ग्रन्थ हैं। शेष 6 'अनुब्राह्मण' माने जाते हैं। इन ब्राह्मणों में सर्वाधिक महत्त्व ताण्ड्य ब्राह्मण का है। जैमिनीय शाखा पर 3 ब्राह्मण मिलते हैं– 1. जैमिनीय ब्राह्मण, 2. जैमिनीयार्षेय ब्राह्मण, 3. जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण। अथर्ववेद की नौ शाखाओं में से पैप्पलादशाखा पर ही एक ब्राह्मण प्राप्त होता है– गोपथ ब्राह्मण। इसमें कुछ अंश ताण्ड्य ब्राह्मण तथा कुछ अंश शतपथ ब्राह्मण से लिया गया है। अतः ये वेदान्त श्रेणी का ग्रन्थ है। इस प्रकार उपलब्ध ब्राह्मणों की सङ्ख्या 15 है।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास– प्रथम खण्ड (वेद), बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
2) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
3) वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः, आचार्यजगदीशचन्द्रमिश्रः, चौखम्बासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4) वैदिक साहित्य – बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी।
5) वैदिक साहित्य – पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
6) वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, प्रयागराज (इलाहाबाद)
7) वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली

2.9 अभ्यास प्रश्न

1) 'ब्राह्मण' शब्द से क्या अभिप्राय है? उनके देशकाल का परिचय प्रस्तुत कीजिये।
2) ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सम्पूर्ण परिचय लिखिये।
3) यजुर्वेदीय ब्राह्मणों का समग्र परिचय प्रस्तुत कीजिये।
4) सामवेदीय ब्राह्मणों पर एक निबन्ध लिखिये।
5) अधोलिखित में से किन्हीं चार ब्राह्मणों पर प्रकाश डालिये –

शतपथ ब्राह्मण, आर्षेय ब्राह्मण, कौषीतकि ब्राह्मण, जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण।

इकाई 3 आरण्यक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक शब्द और अर्थ विचार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यकों का परिचय एवं महत्ता जान सकेंगे।
- आरण्यकों के उद्भव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मयानुसार उपलब्ध आरण्यकों की संख्या जान सकेंगे।

- वेदों के किन-किन शाखाओं से कौन-कौन से आरण्यक सम्बन्धित हैं इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आरण्यक के मूल प्रतिपाद्य विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! आपने 'वैदिक साहित्य का इतिहास' नामक खण्ड की दो इकाईयों का अध्ययन कर लिया है। उन इकाईयों में आपने वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन किया। आपने यह जाना कि संहितायें चार हैं– ऋक्, यजुः, साम, अथर्व। आप यह भी जानते हैं कि प्रत्येक वेद के अपने-अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, यथा – ऋग्वेद का ऐतरेय और शांखायन ब्राह्मण। यजुर्वेद का शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण। सामवेद का पंचविंश, षड्विंश आदि ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

ब्राह्मण ग्रन्थों के समान प्रत्येक वेद के आरण्यक ग्रन्थ भी हैं, यथा – ऋग्वेद का ऐतरेय आरण्यक और शांखायन आरण्यक। यजुर्वेद का बृहदारण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक, मैत्रायणी आरण्यक। सामवेद का तवलकार आरण्यक और छान्दोग्य आरण्यक। अथर्ववेद का गोपथ आरण्यक। इस इकाई में आप इन्हीं आरण्यकों के प्रतिपाद्य विषयों का अध्ययन करेंगे।

3.2 आरण्यक का परिचय

वैदिक वाङ्मय के अनुसार आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं के अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्क ग्रन्थ हैं। इनमें उस विषय का और विस्तृत विवेचन हुआ है। इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषदें हैं। वेद की जितनी शाखायें शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं वे सभी प्राप्त नही होती हैं, परन्तु जो शाखा प्राप्य हैं उनका अवगाहन करने पर कतिपय शाखागत ही आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

3.2.1 आरण्यक शब्द एवं अर्थ का विचार

आरण्यक का अर्थ है **"अरण्ये भवम् आरण्यकम्।"** इस अर्थ में अरण्य शब्द से **तत्रभवः** (पाणिनि के अष्टाध्यायी सूत्र संख्या 4.3.53) इस सूत्र से भव अर्थ मे ठक् प्रत्यय होने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ अरण्य (वन, जंगल) में होने वाला तत्त्व है। अभिप्राय यह है कि अरण्य में होने वाला अध्ययन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा और आध्यात्मिक-विवेचन आरण्यक शब्द से गृहीत है। आचार्य सायण के अनुसार आरण्यक का अर्थ है–

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधीयीतेत्यैवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।।

(तैत्तिरीयारण्यक भाष्य 6) अर्थात् अरण्य में इसका पठन-पाठन होने के कारण इसे आरण्यक कहते हैं। आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। आरण्यकों को रहस्य भी कहा जाता है– **"सर्वे वेदाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः"** (गोपथ ब्राह्मण 1.2.10)। निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य ने भी आरण्यकों को "रहस्य" कहा है–**"ऐतरेयकेरहस्यब्राह्मणे"** (निरुक्त-भाष्य 1.4) आरण्यकों

में यज्ञ का गूढ रहस्य और ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन है, अतः इन्हें "रहस्य" कहा जाता है।

3.2.2 आरण्यकों का महत्त्व

वैदिक तत्त्व मीमांसा के इतिहास में आरण्यकों का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जाता है। महाभारत आदिपर्व मे महर्षि व्यास जी ने आरण्यक के महत्त्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है–

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
आरण्यं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा ।

(महाभारत आदिपर्व 1.331.3)

अर्थात् जैसे दही से मक्खन, मलयपर्वत से चन्दन और ओषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से सार अंश रूप आरण्यक प्राप्त हुए हैं। इनमें यज्ञ के गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। इनमें मुख्य रूप से आत्मविद्या और रहस्यात्मक विषयों के विवरण हैं। वन में रहकर स्वाध्याय और धार्मिक कार्यों में लगे रहने वाले वानप्रस्थ आश्रमवासियों के लिए इन ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। **सोऽयमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः, तद्यथायमाकाशः प्राणेन बृहत्या विष्टब्धः एवं सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्यः प्राणेन बृहत्याविष्टब्धानीत्येवं विद्यात्।** (ऐत.आ.2.1.6) अर्थात् प्राण इस विश्व का धारक है, प्राण की शक्ति से जैसे यह आकाश अपने स्थान पर स्थित है, उसी तरह सबसे बड़े प्राणों से लेकर चींटी तक समस्त जीव इस प्राण के द्वारा ही विधृत है। यदि प्राण न होता, तो इस विश्व का जो यह महान् संस्थान हमारे नेत्रों के सामने सतत आश्चर्य पैदा किया करता है, वह कहीं भी नहीं रहता। अतः प्राण सर्वत्र व्याप्त है **'सर्वे हीदं प्राणेनावृतम्'** प्राण से समस्त जगत् आवृत है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों की प्रस्तुति तथा वानप्रस्थियों के नियमाचरण के कारण भी आरण्यक ग्रन्थों का महत्त्व है।

3.2.3 आरण्यकों का उद्भव

वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक ग्रन्थ आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का विस्तृत वर्णन है। आरण्यकों के उद्भव पर एक दो तर्कपूर्ण मतों पर भी विचार करना चाहिए। कुछ पाश्चात्य मतों के अनुसार यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञविधि अत्यन्त कष्टसाध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी तथा इतना ही नहीं बल्कि इनके आयोजन के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती थी। इन्हें केवल राजा और धनी व्यक्ति ही कर सकता था। अतः आत्मिक शान्ति के लिए आध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से सूक्ष्म आध्यात्म-यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई। दूसरी ओर दुर्बोधता से बचने के लिए आरण्यकों की रचना की गई। इनमें यज्ञों का विधि-विधान

अत्यन्त सरल और कम साधनों के लिए है। इन्हें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी भी कर सकते हैं। दूसरे पक्ष पर यदि विचार करें तो आश्रम चतुष्टय नियमानुसार गृहस्थ ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इनके चार भेद हैं और वेद के भी चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। इनका क्रमशः वर्गीकरण करें तो ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययनगत ब्राह्मण ग्रन्थ विहित कर्मकाण्डों के प्रतिपादन हेतु गृहस्थाश्रम है और वानप्रस्थाश्रमवासी के लिये आरण्यक ग्रन्थ तथा संन्यासाश्रम के लिये उपनिषद् हैं। वैदिक साहित्यानुसार यही पक्ष आरण्यकों के उद्भव और विकास पर सही प्रतीत होता है।

3.2.4 आरण्यकों के रचयिता

वैदिक ज्ञान राशि के अन्तर्गत आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों का ही एक भाग है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के भी रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। कुछ आरण्यकों के रचनाकार इस प्रकार हैं– ऐतरेय ब्राह्मण के रचनाकार महिदास ऐतरेय हैं। वही ऐतरेय आरण्यक के भी रचनाकार हैं–**"एतद् ह स्म वै तद् विद्वान् आह महिदास ऐतरेयः।"** (ऐ.आ. 2.1.8)। ऐसा माना जाता है कि ऐतरेय आरण्यक के चतुर्थ आरण्यक के प्रवक्ता आश्वलायन और पञ्चम आरण्यक के प्रवक्ता शौनक ऋषि हैं। आचार्य सायण ने भी ऐतरेय आरण्यक के भाष्य में अपना यही मत प्रकट किया है, **"ताश्च पंचमे शौनकेन शाखान्तरमाश्रित्य पठिताः।"** (शा.आ.15) सायण ने लिखा है कि शांखायनारण्यक के प्रवक्ता 'गुण शांखायन' हैं। इनके गुरु का नाम कहोल कौषीतकि था–**"गुणाख्यात् शांखायनाद् अस्माभिरधीत्, गुणख्यः शांखायनः कहोलात् कौषीतकेः "**(शा.आ.15)। बृहदारण्यक के प्रवक्ता महर्षि याज्ञवल्क्य हैं। ये सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण के भी प्रवक्ता हैं। शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग बृहदारण्यक है।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के प्रवक्ता कठ ऋषि हैं, **"कठेन मुनिना दृष्टंकाठकं परिकीर्त्यते"** (सायण भा.भूमिका श्लोक 10,11)। मैत्रायणी आरण्यक भी कृष्ण यजुर्वेदीय है। इसके प्रवक्ता भी कठ ऋषि ही हैं, क्योंकि मैत्रायणीयों की गणना 12 कठों के अन्तर्गत होती है। तवलकार आरण्यक जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ही है। इसके प्रवक्ता आचार्य जैमिनि ही हैं। अतः इसी प्रकार और भी आरण्यकों के रचयिता सन्दर्भ को ग्रहण करना चाहिए।

3.2.5 आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय

वैदिक वाङ्मय के अनुसार तथा आरण्यक साहित्य के अवलोकन के पश्चात् आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान आदि ही मानना समुचित होगा। आरण्यकों में यज्ञों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्राण को कालचक्र बताया गया है। दिन और रात्रि प्राण एवं अपान है। प्राण की ब्रह्मा के रूप में उपासना करनी चाहिए। मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि और परमात्मा बताया गया है– **"प्राणोऽग्निः परमात्मा।"** (मैत्रायणी आरण्यक 6.9) तैत्तिरीय आरण्यक में काल का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.10.9-12) में प्राप्त होता है। तैत्तिरीयारण्यक (2.1.1) में यज्ञोपवीत का महत्त्व बताया गया है। यज्ञोपवीत धारण करके जो यज्ञ, पठन आदि किया जाता है, वह सब यज्ञ की श्रेणी में आता है। आजकल "श्रमण" शब्द का

अधिकांश प्रयोग बौद्ध भिक्षु करते हैं, किन्तु इसका सर्वप्रथम प्रयोग तैत्तिरीयारण्क और बृहदारण्यकोपनिषद् (4.3.22) में प्राप्त होता है–**"वातरशना ह वा ऋषयः श्रमणा"** (तैत्तिरीय आरण्यक 2.7.1)। संन्यासियों के लिए परिव्राट या परिव्राजक शब्द का प्रयोग होता था। यह शब्द प्रव्रज्या से बना है। प्रव्रज्या का अभिप्राय है ब्रह्मज्ञान के लिए घर छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करना। इसका प्रथम प्रयोग बृहदारण्यक में हुआ है–

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति। एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति।। (बृ.आ. 4.4.22)

आरण्यकों में ऐतिहासिक तथ्यों का भी अत्यल्प प्रयोग हुआ है। गंगा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को आरण्यकों में अत्यन्त पवित्र बताया गया है। इसी भाग में कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन भी है–**"नमो गंगायमुनयोर्मध्ये य वसन्ति"** (तैत्तिरीय आरण्यक 2.20)। शांखायन आरण्यक में उशीनर, कुरु-पांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन प्राप्त होता है–**"उशीनरेषु, मत्स्येषु, कुरुपांचालेषु, काशीविदेहेषु"** (शा.आ. 6. 1)। मैत्रायणी आरण्यक (1.4) में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नाम भी मिलते हैं। अतः आरण्यकों में मण्डुकप्लुतिन्यायेन संहिता, ब्राह्मण निहित विषयों का प्रतिपादन है।

3.2.6 समुपलब्ध आरण्यक ग्रन्थ

सम्प्रति वैदिक साहित्य के प्रचलित लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र आदि ने उपलब्ध आरण्यकों की संख्या 6 मानी है। आचार्य भगवद्दत्त जी एवं आचार्य वाचस्पति गैरोला ने समुपलब्ध आरण्यकों की संख्या 8 मानी है। ये निम्नवत् हैं–

1) ऋग्वेद के आरण्यक –(क) ऐतरेय आरण्यक (ख) शांखायन आरण्यक
2) शुक्ल यजुर्वेद के आरण्यक –(क) बृहदारण्यक– यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है।
3) कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक –(क) तैत्तिरीय आरण्यक (ख) मैत्रायणी आरण्यक
4) सामवेद के आरण्यक –(क) तवलकार आरण्यक (ख) छान्दोग्य आरण्यक

   (सामवेद की जैमिनि शाखा का तवलकारारण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् कौथुम शाखा से सम्बद्ध है। इसके ही कुछ अंशों को छान्दोग्य आरण्यक कहा जाता है।)

5) अथर्ववेद के आरण्यक –(क) गोपथ आरण्यक

वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्या-परक कुछ अंशों को आरण्यक कह सकते हैं। ऐसा डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

3.3 ऋग्वेद के आरण्यक

वैदिक साहित्यानुसार चरणव्यूह, पातञ्जल महाभाष्य, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में निर्दिष्ट ऋग्वेद की कुल 21 शाखाओं में से वर्तमान में कतिपय शाखा तथा कतिपय ब्राह्मण ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं, जो ब्राह्मण ग्रन्थ प्राप्य हैं उनसे सम्बन्धित आरण्यक भी प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं– (1) ऐतरेय आरण्यक, यह ऋग्वेद की ऐतरेय शाखा से

सम्बन्धित है, (2) शांखायन आरण्यक, यह ऋग्वेद की शांखायन शाखा अपर नाम कौषतकीय शाखा से सम्बद्ध है।

3.3.1 ऐतरेय आरण्यक

इसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है। यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट है। ऐतरेय के अन्दर पाँच मुख्य अध्याय (आरण्यक) हैं, इन्हें प्रपाठक भी कहा जाता है। प्रपाठक अध्यायों में विभक्त है। इसके प्रथम तीन आरण्यक के रचयिता ऐतरेय, चतुर्थ के आश्वलायन तथा पंचम के शौनक माने जाते हैं। डॉक्टर कीथ इसे निरुक्त की अपेक्षा अर्वाचीन मानकर इसका रचनाकाल षष्ठ शताब्दी विक्रम पूर्व मानते हैं, परन्तु यह निरुक्त से प्राचीनतम है। ऐतरेय के प्रथम तीन आरण्यकों के कर्ता महिदास हैं इससे उन्हें ऐतरेय ब्राह्मण का समकालीन मानना न्यायसंगत है। इसका प्रकाशन 1876 ई. में सत्यव्रत सामश्रमी ने किया था। तदनन्तर ए. बी. कीथ ने 1909 ई. में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। षड्गुरुशिष्य ने इस पर मोक्षप्रदा टीका लिखी थी, किन्तु वो प्रकाशित नहीं हो सकी। इस पर सायण और शंकराचार्य ने भी भाष्य लिखे हैं। इस आरण्यक के विशिष्ट प्रसंग प्राणविद्या, प्रज्ञा का महत्त्व, आत्मस्वरूप का वर्णन, वैदिक अनुष्ठान, स्त्रियों का महत्त्व, शास्त्रीय महत्त्व और आचार संहिता के बारे में विस्तार से वर्णन है। प्रत्येक आरण्यक (अध्याय) इसके निम्नवत् हैं –

प्रथम आरण्यक– इसमें महाव्रत का वर्णन है। यह महाव्रत 'गवामयन' सत्र का ही अंश है। इसमें प्रयोज्य मन्त्रों की आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है।

द्वितीय आरण्यक– इसके प्रथम 3 अध्यायों में उक्थ (निष्केवल्य, प्राणविद्या और पुरुष) का विवेचन है। इसके 4 से 6 अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है।

तृतीय आरण्यक– इसको 'संहितोपनिषद्' कहते हैं। इसमें संहिता, पदपाठ, क्रमपाठ तथा स्वर और व्यंजनों के आदिस्वरूप का विवेचन है। यह प्रातिशाख्यों से सम्बद्ध विषय है। इसमें शाकल्य और माण्डूकेय आदि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख है।

चतुर्थ आरण्यक– इसमें 'महानाम्नी' ऋचाओं का संकलन है, जो महाव्रत में बोली जाती हैं।

पंचम आरण्यक– इसमें निष्केवल्य शस्त्र (मन्त्रों) का वर्णन है।

3.3.2 शांखायन आरण्यक

इसका भी सम्बन्ध ऋग्वेद से है। यह ऐतरेय आरण्यक के समान ही पन्द्रह अध्यायों तथा 137 खण्डों में विभक्त है, इसका एक अंश तीसरे अध्याय से छठें अध्याय तक कौषीतकि उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। इसके सातवें और आठवें अध्याय को संहितोपनिषद् कहते हैं। इसी को कौषीतकि आरण्यक भी कहा जाता है। 1922 ई. में श्रीधर पाठक ने सम्पूर्ण शांखायन ब्राह्मण को प्रकाशित किया है। आरण्यक के विशिष्ट प्रसंग को इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है।

1) **प्रत्यक्ष अग्निहोत्र की अपेक्षा आध्यात्मिक अग्निहोत्र का महत्त्व** – इस आरण्यक में बताया गया है कि बाह्य अग्निहोत्र की अपेक्षा आभ्यन्तर (आध्यात्मिक) अग्निहोत्र का बहुत अधिक महत्त्व है। जो साधक आन्तरिक आत्मतत्त्व को न जानकर केवल बाहरी यज्ञ करता है, वह भस्म में हवन करता है। सारे देवता

शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक यज्ञ से उन सबकी तृप्ति होती है। (अध्याय 10)

2) **तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि** – वेदान्तदर्शन के महावाक्य ये दोनों सुभाषित इस आरण्यक में है। **'तत् त्वम् असि'** वह ब्रह्म ही जीवरूप में है। **'अहं ब्रह्म अस्मि'** मैं ब्रह्मरूप हूँ, यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है। **यदयम् आत्मा स एष 'तत् त्वमसि' इत्यात्माऽवगम्यः अहं ब्रह्मास्मि'**। (अध्याय 13)

3) **अहं ब्रह्मास्मि का महत्त्व** – **'अहं ब्रह्मास्मि'** महावाक्य है। यही सर्वोच्च उपदेश है। यही ऋचाओं, यजुष्, साम और अथर्वा का शिरोभाग है। जो इसको जाने बिना वेदाध्ययन करता है, वह मूर्ख है। (अध्याय 14)

4) **अर्थज्ञान का महत्त्व** – अर्थज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन मूर्खता है। जो वेदार्थ का ज्ञानी है, उसके सारे पाप कट जाते हैं और वह मोक्ष का अधिकारी होता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्, अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।। (अध्याय 14)

5) **आचार्यों की वंश-परम्परा** – इसमें पन्द्रह अध्याय में आचार्यों की वंशानुक्रम परम्परा इस प्रकार दी गई है– स्वयम्भू ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, व्यश्व, विश्वमना, सुम्नयु, बृहदिवा, प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन। इस गुण शांखायन से ही शांखायन आरण्यक की परम्परा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः यह आरण्यक गुरु-शिष्य दोनों का सम्मिलित प्रयास है। इसके प्रत्येक अध्यायों में विषय निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं।

क) **प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय** – इसमें ऐतरेय आरण्यक के तुल्य महाव्रत का वर्णन है।

ख) **तृतीय अध्याय से षष्ठ अध्याय** – कौषीतकि उपनिषद् है। इसका विवरण उपनिषद् प्रकरण में है। कुरुक्षेत्र, उशीनर, काशी, पाञ्चाल, विदेहादि प्रदेशों का उल्लेख है।

ग) **सप्तम अध्याय और अष्टम अध्याय** – संहितोपनिषद्। इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

घ) **नवम अध्याय** – इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

ङ) **दशम अध्याय** – इसमें आध्यात्मिक अग्निहोत्र का सांगोपांग वर्णन है।

च) **एकादश अध्याय** – इसमें मृत्यु के निराकरण के लिए एक विशेष याग का विधान है।

छ) **द्वादश अध्याय** – इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।

ज) **त्रयोदश अध्याय** – इसमें श्रवण-मनन आदि के लिए शरीर-शुद्धि, तपस्या, श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

झ) **चतुर्दश अध्याय** – इसमें **'अहं ब्रह्मास्मि'** और वेदों के अर्थज्ञान का महत्त्व बताया गया है।

ञ) **पञ्चदश अध्याय**– इसमें आचार्यों का वंशानुक्रम दिया गया है।

3.4 यजुर्वेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में 100 व 101 यजुर्वेद की शाखा बतायी गयी है जिसमें यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय अथवा भेद के कारण कृष्ण यजुर्वेद के 86 तथा शुक्ल यजुर्वेद के 15 शाखाओं सहित कुल 101 का उल्लेख है परन्तु दोनों सम्प्रदायों के कतिपय शाखागत ब्राह्मण ग्रन्थ मिलने के कारण कुछ ही आरण्यकों का विवरण मिलता है जो निम्नवत् हैं–

3.4.1 शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं का आरण्यक

शुक्ल यजुर्वेद के 15 शाखाओं में से केवल शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ ही माध्यन्दिन एवं काण्व दोनों का प्रतिनिधित्व करता है केवल कुछ अध्यायों का अन्तर है, किन्तु इन दोनों का आरण्यक एक है– बृहदारण्यक।

क) **बृहदारण्यक** – वस्तुतः वैदिक साहित्यानुसार यह शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम 14वें काण्ड के अन्त में दिया गया है। इसका प्रथम प्रकाशन 1889 ई. में आटो वोहट्लिङ्क ने किया था। इसको आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद् के रूप में अधिक मान्यता प्राप्त है। इसमें आत्मतत्त्व की विशद् विवेचना है।

3.4.2 कृष्ण यजुर्वेदीय आरण्यक

ब्रह्म सम्प्रदाय कृष्ण यजुर्वेद के 86 शाखाओं में से कुछ ही शाखाओं पर आरण्यक उपलब्ध हैं, यथा– (क) तैत्तिरीय आरण्यक, (ख) मैत्रायणी आरण्यक।

क) **तैत्तिरीय आरण्यक** – यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का आरण्यक है। इसमें 10 प्रपाठक (अरण) या परिच्छेद हैं। प्रपाठकों के उपविभाग अनुवाक हैं। प्रपाठकों का नामकरण उनके प्रथम पद के आधार पर किया गया है। 10 प्रपाठकों के नाम इस प्रकार हैं– 1. भाद्र, 2. सह वै, 3. चिति, 4. युञ्ज ते, 5. देव वै, 6. परे, 7. शिक्षा, 8. ब्रह्मविद्या, 9. भृगु, 10. नारायणीय। प्रथम प्रपाठक **'भद्रं कर्णेभिः'** मन्त्र से प्रारम्भ हुआ है, अतः इस प्रपाठक का नाम 'भद्र' है। इसी प्रकार अन्य प्रपाठकों के नाम हैं। इस आरण्यक के कुछ विशिष्ट सन्दर्भो का अवलोकन किया जा सकता है, यथा–

1) **दो उपनिषदें** – प्रपाठक 7 से 9 तैत्तिरीय उपनिषद् है और प्रपाठक 10 'महानारायणीय उपनिषद्' है। इस प्रकार दो उपनिषदों का इसमें अन्तर्भाव है। इस दृष्टि से तैत्तिरीय आरण्यक केवल 6 प्रपाठक तक ही है।

2) **पंच महायज्ञ** – इसमें पाँच महायज्ञों के दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है। पाँच महायज्ञ हैं– 1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), 2. देवयज्ञ (अग्निहोत्र), 3. पितृयज्ञ (मातृ-पितृ सेवा, इसे श्राद्ध-तर्पण भी कहते हैं)। 4. मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सत्कार), 5. भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ, पशु-पक्षियों आदि को अन्नादि देना)। इन्हें प्रतिदिन करने का निर्देश है–'**पंच वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते**'।

3) **स्वाध्याय** – वेदमन्त्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। यदि एक मन्त्र का भी नियम से अध्ययन किया जाता है तो स्वाध्याय पूर्ण माना जाता है।

4) **अभिचार-प्रयोग** – प्रपाठक 4 (4.27 और 4.37) में शत्रुनाश के लिए अभिचार-प्रयोगों का उल्लेख है, जैसे– भिन्धि, छिन्धि, जहि, फट् आदि। ये अभिचार मन्त्र हैं।

5) **भौगोलिक वर्णन** – प्रपाठक 4 में कुरुक्षेत्र और खाण्डव वन का वर्णन है।

6) **निर्वचन** – कुछ शब्दों के निर्वचन भी मिलते हैं, जैसे– कश्यप का अर्थ सूर्य है। **'सर्वंपश्यति इति पश्यकः'** यह सबको देखता है। वर्ण व्यत्यय से पश्यक का कश्यप हो गया। इसमें वर्णों का स्थान-परिवर्तन हुआ है। **'पश्यकः कश्यपो भवति'**। (1.8.8)

7) **व्यास मुनि** – व्यास मुनि का पाराशर्य (पराशर के पुत्र) नाम से उल्लेख मिलता है। (1.9 .2)। सूर्य नमस्कार का भी उल्लेख है। (2.2)

प्रपाठकों के अनुसार वर्ण्य प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार हैं–

- **प्रथम प्रपाठक** – इसमें आरुण-केतुक नामक अग्नि की उपासना और तदर्थ इष्टका-चयन का वर्णन है।
- **द्वितीय प्रपाठक** – इसमें स्वाध्याय और पंच महायज्ञों का वर्णन है।
- **तृतीय प्रपाठक** – इसमें चातुर्होत्र चिति से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **चतुर्थ प्रपाठक** – इसमें प्रवर्य होम से सम्बद्ध मन्त्र हैं।
- **पंचम प्रपाठक** – इसमें यज्ञ सम्बन्धी कतिपय संकेत दिए गए हैं।
- **षष्ठ प्रपाठक** – इसमें पितृमेध सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन है। इसमें ऋग्वेद के भी मन्त्र दिए गए हैं।
- **सप्तम से नवम प्रपाठक पर्यन्त** – यह 'तैत्तिरीय उपनिषद्' है।
- **दशम प्रपाठक** – यह 'महानारायणीय उपनिषद्' है। इसको खिल काण्ड मानते हैं।

ख) **मैत्रायणी आरण्यक** – यह कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी शाखा का आरण्यक है। इसको मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। यह मैत्रायणी संहिता के परिशिष्ट के रूप में अन्त में उपलब्ध है। इसमें 7 प्रपाठक हैं। प्रपाठक खण्डों में विभक्त हैं। इस आरण्यक के विशिष्ट प्रतिपाद्य प्रसंग निम्न हैं –

1. **ओम् का महत्त्व** – ओम् ही प्रणव और उद्गीथ है। वही ब्रह्म है। ओम् के द्वारा ब्रह्म की उपासना करें।

   य उद्गीथः, स प्रणवः, एतद् ब्रह्म। तस्माद् 'ओम्' इत्यनेन एतद् उपासीत। (6.4)

2. **ब्रह्म के अनेक रूप** – ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्रमा है।

   त्वं ब्रह्मा त्वं च वै विष्णुः, त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः।
   त्वमग्निर्वरुणो वायुः, त्वमिन्द्रस्त्वं निशाकरः।। (5.1)

3. **चारों वेद ब्रह्म के निश्वास** – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (अथर्वाङ्गिरस वेद) को ब्रह्म का निश्वास बताया गया है।

एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (मैत्रा०आ० 6.32)

4. **चक्रवर्ती राजाओं के नाम** – भारत के चक्रवर्ती 15 महाराजाओं के नाम दिए गए हैं। इनका विवरण पहले दिया जा चुका है। (मैत्रा० 1.4)

5. **मन का महत्त्व** – मन ही सारी बौद्धिक क्रियाओं का संचालक है। देखना, सुनना आदि मन के कारण ही होता है। अतएव काम, संकल्प, विचिकित्सा (सन्देह), श्रद्धा-अश्रद्धा, धैर्य-अधैर्य, धी (बुद्धि, ज्ञान), ह्री (लज्जा), भी (भय) ये सब मन के ही स्वरूप हैं। (मैत्रा० 6.30)

6. **ज्ञान के विघ्न** – इसमें ज्ञान के विघ्नों (ज्ञानोपसर्ग) की एक लम्बी सूची दी गई है। इनमें से कुछ विघ्न ये हैं– मोह का प्रपंच, मनोरंजन-प्रियता, प्रवास, भिक्षावृत्ति शिल्पों में विशेष अभिरुचि, पाखण्डों में रुचि, चाटुकारिता, अभिनय में रुचि, कुतर्क के प्रवृत्ति, इन्द्रजाल (जादू दिखाना) आदि में रुचि। (मैत्रा० 7.8)

7. **जीवात्मा अंगुष्ठमात्र** – जीवात्मा अणु से भी अणु है। वह अंगुष्ठमात्र है **'अंगुष्ठमात्रम् अणोरपि अणुम्'** (मैत्रा० 6.38)

8. **चित्तशुद्धि से मोक्ष** – चित्त या मन ही बन्धन का कारण है। चित्तशुद्धि ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय है। (मैत्रा० 6.34)

इसी प्रकार इसके सातों प्रपाठकों का वर्ण्य-विषय निम्नलिखित हैं–

- **प्रथम प्रपाठक** – ब्रह्मयज्ञ। राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश।
- **द्वितीय प्रपाठक** – शाकायन्य द्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश।
- **तृतीय प्रपाठक** – जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन। कर्मफल और पुनर्जन्म।
- **चतुर्थ प्रपाठक** – ब्रह्म-सायुज्य-प्राप्ति के उपाय।
- **पंचम प्रपाठक** – कौत्सायनी स्तुति। ब्रह्म की नानारूपों में स्थिति।
- **षष्ठ प्रपाठक** – ओम्, प्रणव, उद्गीथ और गायत्री की उपासना। आत्मयज्ञ का वर्णन। षड्ंग योग, शब्दब्रह्म, निर्विषय मन से मोक्ष प्राप्ति।
- **सप्तम प्रपाठक** – आत्म-स्वरूप-वर्णन आदि समुल्लेखित हैं।

3.5 सामवेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में सामवेद की 1000 शाखायें बतायी गयी है, किन्तु कालक्रमवशात् आज कुछ ही शाखायें उपलब्ध हैं। वर्तमान में अतीतगत दृष्टि से और इन ब्रह्मण ग्रन्थ के अनुसार (क) तवलकार आरण्यक (ख) छान्दोग्य आरण्यक, उपलब्ध हैं।

3.5.1 तवलकार आरण्यक

यह सामवेद की जैमिनि शाखा का आरण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। इसका प्रथम प्रकाशन 1931 में एच्. अर्टल ने किया था। इसमें चार अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में कई अनुवाक और खण्ड हैं। चतुर्थ अध्याय के दशम अनुवाक

में प्रख्यात तवलकार या केन उपनिषद् है। ब्राह्मण ग्रन्थों के वर्णन में इसका उल्लेख किया गया है। तवलकार आरण्यक के प्रधान विशिष्ट प्रतिपाद्य विषय निम्न रूप में रेखांकित कर सकते हैं।

1. **ओम् और गायत्री का महत्त्व** – ओम् परम ज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से ही गायत्री की उत्पत्ति हुई है। गायत्री से ही प्रजापति और देवों ने अमरता प्राप्त की। **तद् एतदमृतं गायत्रम्। एतेन वै प्रजापतिरमृतत्वम् अगच्छत्। एतेन देवाः। एतेन ऋषयः।** (जैमि.उप.ब्रा. 3.7.3), **ब्रह्म उ गायत्री** (जैमि.उप.ब्रा. 1.1.8) गायत्री के रूप में यह पवित्र ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ। गायत्री की उपासना करनी चाहिए।
2. **वेदों से सृष्टि-प्रक्रिया** – इसमें वर्णन है कि सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारम्भ वेदों से हुआ।
3. **अतिमानवीय शक्ति प्राप्त करना** – इसमें अतिमानवीय शक्तियों की प्राप्ति के लिए कतिपय साधनाओं का उल्लेख है, जैसे– अर्धरात्रि में श्मशान-साधना आदि।
4. **प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ** – इसमें कतिपय प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख है, जो अन्य ब्राह्मणों में अप्राप्य है, जैसे – प्रेतात्माओं द्वारा साधकों का मार्ग निर्देशन, मृत व्यक्तियों का पुनः प्रकट होना आदि।
5. **सामगान के तत्त्वों की व्याख्या** – इसमें सामगान के तत्त्वों की आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दृष्टि से व्याख्या की गई है।
6. **प्राचीन भाषा और शब्दावली** – इसमें प्राचीन भाषा, प्राचीन व्याकरण सम्बन्धी रूप और प्राचीन शब्दावली प्राप्य है।
7. **देवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक तथ्य** – इसमें देवशास्त्र से सम्बद्ध अनेक आख्यान दिए गए हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्य भी इसमें सन्निहित हैं।

3.5.2 छान्दोग्य आरण्यक

यह सामवेद के ताण्ड्य ब्राह्मण से सम्बद्ध आरण्यक है। सत्यव्रत सामश्रमी ने 1878 ई. में सामवेद आरण्यक संहिता नाम से इसको प्रकाशित किया था। छान्दोग्योपनिषद् का प्रथम भाग छान्दोग्यारण्यक है इसमें सामन् और उद्गीथ की धार्मिक दृष्टि से व्याख्या की गई है। छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय और प्रतिपाद्य विषयों को छान्दोग्य आरण्यक का प्रतिपाद्य समझ लेना चाहिए।

3.6 अथर्ववेद के आरण्यक

वैदिक साहित्य में अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख मिलता है। सम्प्रति वर्तमान साहित्य में मात्र दो संहिता शाखाओं का प्रचलन स्वीकार किया गया है, किन्तु केवल एक ब्राह्मण ग्रन्थ गोपथ ब्राह्मण, का ही नाम उल्लेख है, वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्यापरक कुछ अंशों को आरण्यक कह सकते हैं। ऐसा डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

3.6.1 गोपथ आरण्यक

गोपथ ब्राह्मण के पूर्व के 1 से 5 प्रपाठक के कतिपय अंश तथा उत्तर के 1 से 6 प्रपाठक के कुछ अंश को पढ़ने पर आरण्यकवत् विषय की प्रतीति होती है तथा ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थ की अत्यन्त सन्निकटता से भी प्रतीति की परिपुष्टि दृष्टिगोचर होती है। हो सकता है इसी आधार को मानकर डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने गोपथ ब्राह्मण के कुछ अंश पर विचार करते हुए गोपथ आरण्यक की चर्चा की है। अन्य अतीतविदों के अनुसार वस्तुतः अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है।

3.7 सारांश

आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थ एवं उपनिषद् को जोड़ने वाली कड़ी है। संहिताओं का अन्तिम भाग ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और इनमें यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्क ग्रन्थ हैं। अरण्य में इसका पठन-पाठन होने के कारण इसे आरण्यक कहते हैं। आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है। प्राणविद्या के अतिरिक्त प्रतीकोपासना, ब्रह्मविद्या, आध्यात्मिकता का वर्णन करने से आरण्यकों की विशेष महत्ता है। वैदिक संहिताओं के पश्चात् क्रम में ब्राह्मण ग्रन्थ आते हैं। ब्राह्मणों के बाद आरण्यक आते हैं और उसके बाद उपनिषद्। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थों के पूरक हैं। एक ओर आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट के रूप में हैं तो दूसरी ओर उपनिषद् आरण्यकों के अंश हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरण्यकों का प्रारम्भिक भाग ब्राह्मण हैं और अन्तिम भाग उपनिषद् है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् इतने मिश्रित हैं कि उनके मध्य किसी प्रकार की सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। वेदों और इन ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि रहे हैं, अतः आरण्यकों के रचयिता ब्राह्मण के रचनाकार ही माने जाते हैं। आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान आदि हैं। आरण्यकों में यज्ञों का आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों का विवेचन किया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या की महिमा का विशेष प्रतिपादन किया गया है। यहाँ प्राण को कालचक्र बताया गया है। दिन और रात्रि को प्राण एवं अपान बताया गया है। उपलब्ध आरण्यकों की संख्या 6 है। आचार्य भगवद्दत्त जी एवं आचार्य वाचस्पति गैरोला ने समुपलब्ध आरण्यको की संख्या 8 मानी है ये निम्नवत् हैं– ऋग्वेद के आरण्यक– (क) ऐतरेय आरण्यक, (ख) शांखायन आरण्यक। शुक्ल यजुर्वेद के आरण्यक– (क) बृहदारण्यक यह माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं में प्राप्य है। कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक– (क) तैत्तिरीय आरण्यक, (ख) मैत्रायणी आरण्यक। सामवेद के आरण्यक– (क) तवलकार आरण्यक, (ख) छान्दोग्य आरण्यक, सामवेद की जैमिनि शाखा का तवलकार आरण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण भी कहते हैं। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक् आरण्यक नहीं है।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड वाराणसी 1973 ई. प्रथम संस्करण।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति – आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन प्रयागराज (इलाहाबाद) 1969 ई. प्रथम संस्करण।

3. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।

4. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय – आचार्य भगवद्दत्त ,अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कालेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।

5. वैदिक साहित्य – पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1950 ई. प्रथम संस्करण।

6. वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः – आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन 1988 ई. प्रथम संस्करण।

7. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग 1, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, प्रकाशन 1978 ई. प्रथम संस्करण।

8. वैदिक साहित्य का इतिहास – प्रो. पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, प्रकाशन 2009 ई. प्रथम संस्करण।

9. वैदिक साहित्य – प्रो.किरीट जोशी, सान्दीपनि विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. आरण्यकों के रचना काल पर प्रकाश डालिए।

2 .ऐतरेय आरण्यक पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

3. आरण्यकों का महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

4. आरण्यकों का संक्षिप्त परिचय सहित प्रतिपाद्य विषय पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 4 उपनिषद्

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- उपनिषद् शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ से परिचित होंगे।
- वैदिक साहित्य ही उपनिषदों की पृष्ठभूमि है, इससे परिचित होंगे।
- उपनिषदों के रचनाकाल का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख उपनिषदों पर कृत भाष्य और अनुवाद की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- वेदानुसार उपनिषदों के संख्या से आप परिचित होंगे।
- उपनिषदों के महत्त्व को जान सकेंगे।
- उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों के स्थान एवं तत्त्व से परिचित होंगे।

4.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य विश्व के प्राचीनतम साहित्यों की अप्रतिम, अकल्पनीय, अनुपम ज्ञान निधि है। वेद सर्वज्ञान राशि सहित भारतीय धर्म, संस्कार, संस्कृति एवं वैदिक दर्शन के मूल उत्स हैं। सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान राशि इतनी दीर्घ है कि इनसे सहस्राधिक ग्रन्थ निःसृत हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य के मूलभूत स्वरूप को जानने हेतु **"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"** (आपस्तम्ब यज्ञ परिभाषा) इस लक्षण के अनुसार मन्त्र संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ को वेद कहते हैं, ये दोनों एक ही नाम वेद से जाने जाते हैं। इस ज्ञान निधि को वैदिक वाङ्मय में तीन भागों में विभक्त किया गया है– 1. ब्राह्मण, 2. आरण्यक, 3. उपनिषद्। कुछ स्थान पर इनके चार भाग मिलते हैं– 1. संहिता, 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक और 4. उपनिषद्। इन विभागों में क्रमशः कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, ज्ञानकाण्ड हैं। कर्मकाण्ड संहिता और ब्राह्मण में निहित है, उपासनाकाण्ड आरण्यक का विषय है और ज्ञानकाण्ड उपनिषद् में सन्निहित है। प्रस्तुत इकाई में आप उपनिषदों के विषय में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.2 उपनिषद् का परिचय

उपनिषदों को रहस्य भी कहा जाता है। यह भारतीय वैदिक दर्शन की पृष्ठभूमि है। उपनिषदों की संख्या अनगिनत है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के वैदिक दार्शनिक विचारधारा के अनुसार प्राचीनतम उपनिषदें 10 हैं और बाद की लगभग 98 से 104 तक उत्तरकालीन हैं। इनका मत है कि कुछ उपनिषदों की रचना 14वीं या 15वीं शताब्दी में हुई। सम्प्रति चारों वेदों से सम्बन्धित उपनिषद् प्राप्त हैं।

4.2.1 उपनिषद् शब्दार्थ विचार

उपनिषद् शब्द **उप+नि+सद्+क्विप्** अर्थात् **उप** और **नि** उपसर्गपूर्वक **षद्लृ गतौ** धातु से **क्विप्** प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है–उप = समीप, नि = निश्चय से या निष्ठापूर्वक, **सद्** = बैठना, अर्थात् **षद्लृ** धातु का अर्थ बैठना भी होता है, अतः तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के पास सविनय बैठना। आचार्य शंकर ने कठोपनिषद् के भाष्य प्रस्तावना में उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है। उन्होंने उपनिषद् शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। सद् धातु (षदलृ विशरणगत्यवसादनेषु) के तीन अर्थ हैं–

1. **विशरण** अर्थात् नाश होना, जिसमें संसार की मूलभूत अविद्या का नाश होता है।
2. **गति** अर्थात् प्राप्त करना या जानना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है।
3. **अवसादन** अर्थात् शिथिल होना, जिससे मनुष्य के दुःख या बन्धन शिथिल होते हैं।

इस प्रकार से आचार्य शंकर ने उपनिषदों के अध्ययन से अविद्या का नाश, ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति और उसका ज्ञान तथा सांसारिक दुःख-निरोध, इन तीनों अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या स्वीकार किया है। ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों को उपनिषद् कहा जाता है। अमरकोषकार ने उपनिषद् शब्द का अर्थ **"धर्मे रहस्युपनिषत्"** लिखा है, इनके अनुसार उपनिषद् शब्द गूढ धर्म एवं रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

4.2.2 उपनिषदों का महत्त्व

वैदिक साहित्य में उपनिषदों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक सूक्तों में जिस दार्शनिक विचारधारा का प्रारूप मिलता है उसका विकसित रूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। ये उपनिषद् ग्रन्थ ही भारतीय तत्त्वज्ञान एवं धार्मिक सिद्धान्तों के मूलस्रोत हैं। श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य में **"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः"** कहकर व्यास जी ने सिद्ध कर दिया कि उपनिषदों का महत्त्व संस्कृत साहित्य मे कितना रहस्यपूर्ण है। उपनिषदों के महत्त्व का अनुमान इससे भी लगाया जा सकता है कि देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद किया गया है। उपनिषदों में ऋषि मुनियों ने अपने जीवन में प्राप्त ज्ञान और अनुभव का सार डाला है। जीवन के सभी आध्यात्मिक, दार्शनिक विचार और चिन्तन उपनिषदों में हैं। उपनिषदों से प्राप्त ज्ञान सदैव शाश्वत और सनातन है। यह जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग है जिससे हम जीवन के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषद् आत्मा से परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है तथा प्रस्थनत्रयी (ब्रह्मसूत्र,उपनिषद्, गीता) में इनका स्थान है।

4.2.3 उपनिषदों का रचनाकाल

उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम सीमा बिन्दु हैं। हमें उपनिषदों के रचना सन्दर्भ में कुछ पक्षों पर अवश्य मन्थन करना चाहिए। प्रथम पक्ष– वैदिक काल निर्धारणकर्ता भारतीय तथा पाश्चात्य मनीषियों ने जो समय वेदों के रचनाकाल को बताते हुए, ब्राह्मण ग्रन्थों का जो रचनाकाल लिखा है वही हमें प्रामाणिक रूप से उपनिषद् काल मानना चाहिए। जैसा कि स्वामी दयानन्द एवं श्री रघुनन्दन शर्मा सृष्टि के प्रारम्भ से वेदों का आविर्भाव मानते हैं। द्वितीय पक्ष–श्री बालगंगाधर तिलक महोदय कृत्तिका काल 2500-1400 ई.पू. ब्रह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल माना है। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने 2500 ई.पू. लिखा है। पाश्चात्य वैदिक अध्येता मैक्समूलर ने 800 ई.पू. से 600 ई.पू. के समय को ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना काल माना है। यहाँ बार-बार ब्राह्मण ग्रन्थों का काल देने का अभिप्राय मात्र इतना ही है कि जो काल इनका था वही समय उपनिषदों का था, क्योंकि उपनिषद् ब्राह्मण के अन्तिम भाग हैं। तृतीय पक्ष– प्रो. वैद्य ने मैत्रायणीय उपनिषद् में उद्धृत कुछ ज्योतिषीय बिन्दुओं को लेकर उपनिषद् काल निर्धारण करने को कहा है। श्री बालगंगाधर तिलक महोदय ने मैत्रायणीय उपनिषद् का काल 1900 वि.पू. (लगभग 1950 ई.पू.) माना है। प्रो. रानाडे ने उपनिषद् काल को ठीक-ठीक निश्चित करने में असमर्थता व्यक्त करते हुए इसकी दो सीमाएँ निर्धारित की हैं– पूर्व सीमा 12वीं शती ई.पू. और दूसरी छठीं शताब्दी ई.पू.। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन भाग1 में प्रारम्भिक एवं प्रामाणिक, जिन पर शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है उन उपनिषदों का रचना काल 700 ई.पू. से 600 ई.पू. अथवा ईसा से 500 वर्ष पूर्व माना है तथा 108 उपनिषदों में से पहले की 13 छोड़कर शेष को उत्तरकालीन माना है और इनमें भी कुछ उपनिषदों का रचना काल 14वीं या 15वीं शताब्दी हुआ ऐसा लिखा हैं। चतुर्थ पक्ष– उपरोक्त के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों से भी

उपनिषद् काल निर्धारण किया जा सकता है। उपनिषदों मे अनेक स्थलों पर विदेह जनक, कैकय अश्वपति, पांचाल प्रवाहण, यम नचिकेता और काशीराज अजातशत्रु आदि का वर्णन मिलता है। महर्षि पाणिनि 500 ई.पू. उपनिषद् का रचनाकाल मानते हुए अष्टाध्यायी सूत्रों में (सूत्र संख्या–1.4.79, 4.3.73, 4.3.129) उपनिषदों का उद्धरण दिया है। इन राजाओं तथा ग्रन्थकार पाणिनि के समय को भी चिन्हित कर उपनिषद् काल प्रामाणिक रूप से माना जा सकता है। उपनिषद् रचनाकाल के सन्दर्भ में विस्तृत ज्ञान के लिये गीता प्रेस कल्याण उपनिषद् अंक तथा भारतीय दर्शन का इतिहास एवं वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास मंथन किया जा सकता है।

4.2.4 उपनिषदों के रचयिता

वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बित तथ्यों के आधार पर उपनिषदों का रचयिता उन्हें मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए जिन ऋषियों ने वेद के भिन्न-भिन्न शाखाओं को अनेक शिष्यों मे वितरित किया, जो कालान्तर में उन शिष्यों के नामानुसार वेद के पृथक्-पृथक् शाखा रूप में प्रचलित हुई। अतः उपनिषद् वाङ्मय के रचनाकर्ता इन शाखाओं से सम्बन्धित ऋषि ही हैं, ऐसा इस कारण भी मानना चाहिए क्योंकि प्रायः उपनिषदों के नाम और अन्दर के प्रतिपाद्य विषय से भी स्पष्ट हो जाता है।

4.2.5 उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय

उपनिषद् तर्क-प्रधान ग्रन्थ है। वैदिक ऋषियों की बौद्धिक शक्ति की पराकाष्ठा उन्हीं के द्वारा प्रकाश में आयी है। उपनिषदों के तर्क का अपना मौलिक आधार है। उपनिषदों में इस प्रकार के तर्क द्वारा वस्तु की यथार्थता का दिग्दर्शन कराने का कारण भी विद्यमान है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय को स्पष्ट करने के लिए सहज एवं सरल उपाय या उत्तर नहीं है। आत्मविद्या के प्रसंग में अतिशय महत्त्व स्वीकार किया जाता है, यथा– विद्या, अविद्या, श्रेयस, प्रेयस्, ओउम्, आचार्य-शिष्य, अधिकारी, शान्ति, ब्रह्मविद्या, अग्निविद्या, मन, बुद्धि, योग, संयम, बन्धन, कामना, प्राण आदि हैं। वस्तुतः देखा जाये तो उपनिषद् वेदों की विचार प्रधान संस्कृति के ही व्याख्यान हैं। वेद के चार भाग हैं– संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्।

1) संहिता में वैदिक देवी देवताओं की स्तुति के मन्त्र हैं।
2) ब्राह्मण में वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञों का वर्णन है।
3) आरण्यक में कर्मकाण्ड और यज्ञों की रूपक कथाएँ और तत्सम्बन्धी दार्शनिक व्याख्याएँ हैं।
4) उपनिषद् में वास्तविक वैदिक दर्शन का सार है।

4.2.6 उपलब्ध उपनिषदों की संख्या

वैदिक वाङ्मय के मतानुसार शंकराचार्य जी ने 10 उपनिषदों को प्रामाणिक माना है तथा उन पर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य भी लिखा है। मुक्तिक उपनिषद् ने भी दशोपनिषदं पठ (1.27) के द्वारा प्रामाणिक उपनिषदें 10 मानी हैं तथा इनके ये नाम दिये हैं–

ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।। (मुक्तिकोपनिषद् 1.30)

अर्थात् ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् एवं बृहदारण्यकोपनिषद् हैं। इसके अतिरिक्त कौषीतकि उपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् तथा मैत्रायणीयोपनिषद् भी प्राचीन माने जाते हैं क्योंकि आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में कौषीतकि उपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद् के उद्धरण दिए हैं। अतः इन दो को लेकर प्राचीन उपनिषदों की संख्या 12 और तृतीय मैत्रायणीयोपनिषद् को लेकर 13 मानी जाती है। वैदिक साहित्यानुसार उपनिषदों की संख्या के विषय में मतभेद है। उपनिषदों की संख्या 108 से 223 तक मानी जाती है। मुक्तिकोपनिषद् 108, उपनिषद्वाक्यमहाकोश 223, अड्यार लाईब्रेरी (मद्रास) से लगभग 200 उपनिषदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भारतीय दर्शन के इतिहास ग्रन्थ में सन् 1917 में निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित उपनिषदों के अनुसार इनकी संख्या 112 मानी है परन्तु स्पष्टतया 108 उपनिषदों का उल्लेख शुक्ल यजुर्वेदीय मुक्तिकोपनिषद् के प्रथम अध्याय में प्राप्त होता हैं। इस उपनिषद् में दो अध्याय हैं, जिनमें प्रथम अध्याय के 56 मन्त्रों में ऋग्वेद से 10, शुक्ल यजुर्वेद से 19, कृष्ण यजुर्वेद से 32, सामवेद से 16, अथर्ववेद से 31 उपनिषदों के नाम का उल्लेख किया गया है। मुक्तिकोपनिषदानुसार समग्र 108 उपनिषदें निम्नवत् हैं –

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।

ब्रह्मकैवल्यजाबालष्वेताष्वो हंस आरुणिः।
गर्भो नारायणो हंसो बिन्दुर्नादशिरः शिखा।।

मैत्रायणी कौषीतकी बृहज्जाबालतापनी।
कालाग्निरुद्रमैत्रेयी सुबालक्षुरिमन्त्रिका।।

सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम्।
तेजोनादध्यानविद्यायोगतत्त्वात्मबोधकम्।।

परिव्राट् त्रिशिखी सीता चूडा निर्वाणमण्डलम्।
दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाह्वयम्।।

रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम्।
शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकं शिखा।।

तुरीयातीतसंन्यासपरिव्राजाक्षमालिका।
अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका।।

सावित्र्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्मावधूतकम्।
त्रिपुरातपनं देवीत्रिपुरा कठभावना।।

हृदयं कुण्डली भस्म रुद्राक्षगणदर्शनम्।
तारसारमहावाक्य पञ्चब्रह्माग्निहोत्रकम् ।।

गोपालतपनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम्।
शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम्।।
कलिजाबालिसौभाग्यरहस्यऋचमुक्तिका ।। 1.30–39।।

अर्थात् – 1.ईश, 2.केन, 3.कठ, 4.प्रश्न, 5.मुण्डक, 6.माण्डूक्य, 7.तैत्तिरीय, 8.ऐतरेय, 9. छान्दोग्य, 10.बृहदारण्यक, 11.बह्म, 12.कैवल्य, 13.जाबाल, 14.श्वेताश्वतर, 15.हंस, 16.

आरुणिक, 17.गर्भ, 18.नारायण, 19.परमहंस, 20.अमृतबिन्दु, 21.अमृतनाद, 22. अथर्वशिरस, 23.अथर्वशिखा, 24.मैत्रायणी, 25.कौषीतकिबाह्मण, 26.बृहज्जाबाल, 27. नृसिंहतापनीय, 28. कालाग्निरुद्र, 29.मैत्रेयी, 30.सुबाल, 31.क्षुरिका, 32.यन्त्रिका, 33. सर्वसारे, 34.निरालम्ब, 35.शुकरहस्य, 36.वज्रसूचिका, 37.तेजोबिन्दु, 38.नादबिन्दु, 39. ध्यानबिन्दु, 40.ब्रह्मविद्या, 41.योगतत्व, 42.आत्मप्रबोध, 43.नारदपरिव्राजक, 44. त्रिशिखिब्राह्मण, 45.सीता, 46.योगचूडामणि, 47.निर्वाण, 48.मण्डलब्राह्मण, 49.दक्षिणामूर्ति, 50.शरभ, 51.स्कन्द, 52.त्रिपादविभूति महानारायण, 53.अद्वयतारक, 54.रामरहस्य, 55. रामतापनीय, 56.वासुदेव, 57.मुद्गल, 58.शाण्डिल्य, 59.पिङ्गल, 60.भिक्षक, 61.महा, 62. शारीरक, 63.योगशिखा, 64.तुरीयातीत, 65.संन्यास, 66.परमहंसपरिव्राजक, 67.अक्षमाला, 68.अव्यक्त, 69.एकाक्षर, 70.अन्नपूर्णा, 71.सूर्य, 72.अक्षि, 73.अध्यात्म, 74.कुर्डिक, 75. सावित्री, 76.आत्मा, 77.पाशुपत, 78.परब्रह्म, 79.अवधूत, 80.त्रिपुरातापनीय, 81.देवी, 82. त्रिपुरा, 83.कठरुद्र, 84.भावना, 85.रुद्रहृदय, 86.योगकुण्डली 87.महावाक्य, 88.पञ्चब्रह्म, 89.प्राणाग्निहोत्र, 90.गोपालतापनीय, 91.कृष्ण, 92.याज्ञवल्क्य, 93.वराह, 94.शाट्यायनीय, 95.हयग्रीव, 96.दत्तात्रेय, 97.गरुड, 98.कलिसंतरण, 99.जाबालि, 100.सौभाग्यलक्ष्मी, 101. भस्म जाबाल, 102.रुद्राक्ष जाबाल, 103.गणपति, 104.जाबालदर्शन, 105.तारसार, 106. सरस्वतीरहस्य, 107.बह्वृच, 108. मुक्तिकोपनिषद् हैं।

डॉ. राधाकृष्णन् ने इसके साथ इन चार को भी लिखा है। निर्णय सागर प्रेस के अनुसार – 1. नारायणोत्तर, 2. नृसिंहोत्तर तापिनी, 3. रामोत्तर तापिनी, 4. गोपलोत्तर तापिनी। इनको लेकर 112 उपनिषदें हैं।

4.2.7 प्रमुख उपनिषदें और इनका भाष्य तथा अनुवाद

आचार्य शंकर ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक सहित 10 प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य लिखा है जिन्हें शांकरभाष्य के नाम से जाना जाता है तथा भाष्यों में श्वेताश्वतरोपनिषद्, मैत्रायणीयोपनिषद् और कौषितकीयोपनिषद् का उल्लेख करने के कारण प्रमुख उपनिषदें 13 हैं। उपरोक्त 13 उपनिषदों को मुख्य मानकर पाश्चात्य विद्वान ह्यूम ने सन्1821 में अंग्रेजी अनुवाद किया है। शाहजहाँ के पुत्र एवं औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह ने भी लगभग 50 उपनिषदों का सन् 1656-57 में फारसी भाषा में अनुवाद किया है। इस फारसी अनुवाद को फ्रेंच यात्री बर्नियर अपने साथ फ्रांस ले गया, जिसे एन्क्वेटिल ड्यूरेन ने 1775 ई. में प्राप्त कर लिया और उसने उसके दो अनुवाद किये– एक फ्रेंच भाषा में और दूसरा लैटिन भाषा में। फ्रेंच अनुवाद तो प्रकाशित न हो सका, किन्तु लैटिन अनुवाद सन् 1801-1802 में 'औपनिखत' नाम से प्रकाशित हुआ। फारसी अनुवाद के आधार पर सन् 1720 में इसका हिन्दी अनुवाद हुआ, जिसका नाम 'उपनिषद् भाष्य' रखा गया। मैक्समूलर ने सन् 1879-1884 के मध्य सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट ग्रन्थमाला में 12 उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इसके पश्चात् जर्मन विद्वानों ने सन् 1882 से 1889 तक एफ.मिशल तथा बोथलिक तथा सन् 1897 में पाल ड्यूसन ने जर्मन भाषा मे अनुवाद प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त भारतीय विद्वानों में सन् 1832 में राजा राममोहन राय ने कुछ उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया तथा सीताराम शास्त्री और गंगानाथ झा ने सन् 1898-1901 के मध्य आठ उपनिषदों का अंग्रेजी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त और भी विद्वानों ने यूरोपीय भाषाओं में उपनिषदों का अनुवाद किया है जिसके द्वारा इसका प्रचार-प्रसार हो गया।

4.3 ऋग्वेद के उपनिषद्

वैदिक साहित्यानुसार ऋग्वेद से सम्बन्धित 10 उपनिषदें हैं–

> **ऐतरेयकौषीतकीनादबिन्द्वात्मप्रबोधनिर्वाण–**
> **मुद्गलाक्षमालिकात्रिपुरासौभाग्यबह्वृचा**
> **नामृग्वेदगतानां दशसंख्याकानामुपनिषदाम्।।**मुक्तिकोपनिषद् 50।।

1.ऐतरेय, 2.कौषीतकी, 3.नाद-बिन्दु, 4.आत्मबोध, 5.निर्वाण, 6.मुद्गल, 7.अक्षमालिक, 8. त्रिपुर, 9.सौभाग्य, 10.बह्वृच। यहाँ प्रमुख उपनिषदों के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डाला जायेगा।

4.3.1 ऐतरेय उपनिषद्

यह ऐतरेयारण्यक का एक अंश है। ऐतरेयारण्यक के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ खण्ड ही "ऐतरेयोपनिषद्" है। इस प्रकार इसमें कुल तीन अध्याय हैं।

1. प्रथम अध्याय में बताया गया है कि परमात्मा के ईक्षण शक्ति से सृष्टि हुई है। शरीर में सभी देवों का निवास है। शरीर में व्याप्त ब्रह्म के दर्शन से ही जीवात्मा का नाम "इन्द्र" पड़ा।
2. द्वितीय अध्याय में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन है और कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म का वर्णन है।
3. तृतीय अध्याय में प्रज्ञान-ब्रह्म का वर्णन है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण अध्याय है। मन ही ब्रह्म, इन्द्र और प्रजापति है। मन के ही विभिन्न नाम हैं, विज्ञान, प्रज्ञा, धृति, मति, मनीषा, स्मृति, संकल्प, काम, प्राण आदि। चतुर्विध सृष्टि 1.अण्डज – पक्षी आदि, 2.जरायुज – मनुष्यादि, 3.स्वेदज – जूँ आदि, 4. उद्भिज् –वृक्षादि वर्णित है।

4.3.2 कौषीतकि उपनिषद्

यह कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध है। कौषीतकि ब्राह्मण से सम्बद्ध कौषीतकि आरण्यक है इसका अपर नाम शांखायन आरण्यक है। इसी आरण्यक के 3 से 6 अध्याय तक को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। इसमें कुल 4 अध्याय हैं, इसको कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् कहते हैं।

1. प्रथम अध्याय में मृत्यु के बाद जीवात्मा के प्रयाण के देवयान और पितृयान नामक मार्गों का वर्णन आदि प्रासंगिक विषय है।
2. द्वितीय अध्याय में आत्मा के प्रतीक प्राण के स्वरूप का विवेचन है। प्राण ही ब्रह्म है और मन प्राणरूपी ब्रह्म का दूत है, नेत्र रक्षक हैं, श्रोत्र द्वारपाल हैं और वाणी दासी है। जो इनके स्वरूप को जानता है, वही इन्द्रियों पर अधिकार रख सकता है आदि विषय प्रतिपादित है।
3. तृतीय अध्याय में इन्द्र प्रतर्दन को प्राण और प्रज्ञा का उपदेश देते हैं। इसी प्रसङ्ग में प्राणतत्त्व का विशद् विवेचन किया गया है।

4. चतुर्थ अध्याय में काशिराज अजातशत्रु बलाका को पर ब्रह्म (ब्रह्मविद्या) का उपदेश देते हैं। गार्ग्य गर्गगोत्र में उत्पन्न गार्ग्य नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे, जो बलाका के पुत्र थे।

4.4 यजुर्वेद के उपनिषद्

वैदिक साहित्यानुसार शुक्लत्व-कृष्णत्व भेद से यजुर्वेद दो भागों में विभक्त है। अतः विभक्तानुसार इस वेद से सम्बन्धित प्राप्य उपनिषद् निम्नवत् हैं।

शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित 19 उपनिषदें हैं–

> ईशावास्यबृहदारण्यजाबालहंसपरमहंससुबाल–
> मन्त्रिकानिरालम्बत्रिशिखीब्राह्मणमण्डलब्राह्मणाद्वयतारक–
> पैङ्गलभिक्षुतुरीयातीताध्यात्मतारसारयाज्ञवल्क्य–
> शाट्यायनीमुक्तिकानां शुक्लयजुर्वेदगतानामेकोनविंशतिः ।।मुक्तिकोपनिषद् 51।।

1.ईश, 2.बृहदारण्यक, 3.जाबाल, 4.हंस, 5.परमहंस, 6.सुबाल, 7.मान्त्रिक, 8.निरालम्ब, 9. त्रिशिख, 10.मण्डलब्राह्मण, 11.अद्वयतारक, 12.पैंगल, 13.भिक्षुक, 14.तुरीयातीत, 15. अध्यात्म, 16.तारसार, 17.याज्ञवल्क्य, 18.शाट्यायनी, 19.मुक्तिक।

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित 32 उपनिषदें हैं–

> कठवल्लीतैत्तिरीयकब्रह्मकैवल्यश्वेताश्वतरगर्भ–
> नारायणामृतबिन्द्वमृतनादकालाग्निरुद्रक्षुरिका–
> सर्वसारशुकरहस्यतेजोबिन्दुध्यानबिन्दुब्रह्मविद्या–
> योगतत्त्वदक्षिणामूर्तिस्कन्दशारीरकयोगशिखैकाक्षर–
> अक्ष्यवधूतकठरुद्रहृदययोगकुण्डलिनीपञ्चब्रह्म–
> प्राणाग्निहोत्रवराहकलिसन्तरणसरस्वतीरहस्यानां
> कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत्संख्याकानमुपनिषदाम् ।। मुक्तिकोपनिषद् 52।।

1.कठ, 2.तैत्तिरीय, 3.ब्रह्म, 4.कैवल्य, 5.श्वेताश्वतर, 6.गर्भ, 7.नारायण, 8.अमृत-बिन्दु, 9.अमृत-नाद, 10.कालाग्निरुद्र, 11.क्षुरिक, 12.सर्व-सार, 13.शुक-रहस्य, 14.तेजो-बिन्दु, 15. ध्यानिबन्दु, 16. ब्रह्मविद्या, 17. योगतत्त्व, 18. दक्षिणामूर्ति, 19. स्कन्द, 20. शारीरक, 21. योगिशखा, 22. एकाक्षर, 23. अक्षि, 24. अवधूत, 25. कठरुद्र, 26. रुद्र-हृदय, 27. योग-कुण्डिलिन, 28. पंच-ब्रह्म, 29. प्राणाग्नि-होत्र, 30. वराह, 31. किल-सन्तरण, 32. सरस्वती-रहस्य।

यहाँ प्रमुख उपनिषदों के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डाला जायेगा।

4.4.1 शुक्ल यजुर्वेद के उपनिषद्

क) ईश उपनिषद् (ईशावास्योपनिषद्)

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा का अन्तिम चालीसवाँ अध्याय ही "ईशोपनिषद्" है। इसमें कुल 18 मन्त्र हैं। इसका प्रथम मन्त्र "ईशावास्यमिदं" से प्रारम्भ होता है, अतः इसका नाम ईशोपनिषद् पड़ गया, इसको ईशावास्योपनिषद् भी कहते हैं। निष्काम कर्म, परमार्थ ज्ञान की प्रधानता, कर्म और ज्ञान का समन्वय और ईश्वर की सर्वव्यापकता इसका प्रतिपाद्य विषय है। यह लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण

उपनिषद् है। यह ज्ञान, कर्म और उपासना का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। अतः इसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ माना गया है। ईशावास्योपनिषद् को सम्पूर्ण गीता का मूल माना जाता है।

ख) बृहदारण्यकोपनिषद्

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन एवं काण्व शाखा से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण के 14वें काण्ड के अन्तिम छः अध्यायों को ही बृहदारण्यकोपनिषद् कहा जाता है। इसमें आरण्यक और उपनिषद् का सम्मिश्रण होने से यह नाम पड़ा है। इसे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों कह सकते हैं। इसमें कुल छः अध्याय हैं। यह आकार में सबसे विशाल उपनिषद् है। यह अध्यात्म-शिक्षा से ओत-प्रोत है।

प्रथम अध्याय में यज्ञीय-अश्व के रूप में परम पुरुष का वर्णन, मृत्यु का विकराल रूप और प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

द्वितीय अध्याय में गार्ग्य और काशीराज अजातशत्रु का संवाद, याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी कात्यायनी एवं मैत्रेयी का संवाद, ब्रह्म के दो रूप मूर्त अमूर्त आदि का वर्णन है।

तृतीय अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है, जनक के सभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद साथ में याज्ञवल्क्या द्वारा प्रतिपक्षियों को पराजित करना।

चतुर्थ अध्याय में याज्ञवल्क्य द्वारा राजा जनक को ब्रह्मविद्या का उपदेश है, इसमें पुनः याज्ञवल्क्य का सम्पत्ति-विभाजन का वर्णन, मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश आदि है।

पञ्चम अध्याय में प्रजापति द्वारा देव, मनुष्य और असुरों को द द द का उपदेश। ब्रह्म के विभिन्न रूपों का वर्णन, प्राण ही वेदरूप है और गायत्री के विभिन्न रूपों का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में प्राण की श्रेष्ठता, ऋषि प्रवहण जैबलि और श्वेतकेतु का दार्शनिक संवाद, पञ्चाग्नि-मीमांसा एवं ऋषियों की वंश-परम्परा का विस्तृत वर्णन आदि है।

4.4.2 कृष्ण यजुर्वेद के उपनिषद्

क) कठोपनिषद्

कृष्ण यजुर्वेद के "कठशाखा" से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम "कठोपनिषद्" है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में 3 खण्ड (वल्ली) हैं। इस उपनिषद् में यम और नचिकेता के संवादों का वर्णन है।

ख) तैत्तिरीय उपनिषद्

तैत्तिरीय आरण्यक के अन्तिम तीन प्रपाठकों (7,8 और 9) को ही तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। प्रपाठकों के नामों में परिवर्तन कर दिया गया है। संहितोपनिषद् (प्र.7) को 'शिक्षावल्ली', वारुणी उपनिषद् (प्र.8 और 9) को क्रमशः 'ब्रह्मानन्द वल्ली' और 'भृगु वल्ली' नाम दिया गया है। इसमें तीन प्रपाठकों के स्थान पर तीन वल्ली (अध्याय) हैं। इसमें अध्यायों को "वल्ली" कहा गया है। इसका प्रथम अध्याय शिक्षावल्ली, द्वितीय अध्याय ब्रह्मानन्दवल्ली और तृतीय अध्याय भृगुवल्ली है।

प्रथम अध्याय "शिक्षावल्ली" में वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान का विवेचन है। **(वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः। 1.2.1)** इसमें वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के प्रकार भी दिए गए हैं। आचार्य अपने शिष्य को कैसे अनुशासित करता है यह भी बताया गया है।

द्वितीय अध्याय ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मा के स्वरूप को बताया गया है। ब्रह्मा को आनन्द कहा गया है। समस्त सृष्टि ब्रह्मा से उत्पन्न हुई है। ब्रह्म की प्राप्ति से परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसमें पाँच कोशों (अन्न, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनन्द) का भी वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय "भृगुवल्ली" में भृगु और वरुण का संवाद है। यहाँ भी ब्रह्म के स्वरूप को बताया गया है तथा पंचकोशों के विराट् रूप का भी वर्णन है।

ग) मैत्रायणी उपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता से सम्बन्धित है। प्राचीनतम उपनिषदों की भाँति यह गद्यबद्ध है। इसमें कुल सात अध्याय हैं, जिनमें षष्ठ अध्याय के अन्तिम आठ प्रपाठक और सप्तम अध्याय परिशिष्ट रूप है। इसमें योग के अष्टाङ्गों का विवेचन तथा हठयोग के मन्त्र सिद्धान्तों का विवरण प्राप्त होता है। इसका मुख्य विषय आत्मरूप का विवेचन है। इसमें वेद-विरोधी सम्प्रदायों का भी उल्लेख मिलता है। इस उपनिषद् का विषय विवेचन तीन प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम प्रश्न है कि आत्मा भौतिक शरीर में किस प्रकार प्रवेश पाता है? इसका उत्तर दिया गया है कि स्वयं प्रजापति ही स्वरचित शरीर में चेतनता प्रदान करने के उद्देश्य से पंचप्राणवायु के रूप में प्रविष्ट होता है।

द्वितीय प्रश्न है कि यह परमात्मा किस प्रकार भूतात्मा बनता है? इस प्रश्न का उत्तर सांख्य सिद्धान्तों पर आधारित है। आत्मा प्रकृति के गुणों से पराभूत होकर अपने को भूल जाता है। तदनन्तर आत्मज्ञान एवं मोक्ष के लिए प्रयास करता है।

तृतीय प्रश्न है कि इस दुःखात्मक स्थिति से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है? इस प्रश्न का समाधान स्वतन्त्र रूप से दिया गया है– 'ब्राह्मण धर्म का पालन करने वाले वर्णधर्म के अनुयायी व्यक्ति ही ज्ञान, तप और निदिध्यासन से ब्रह्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। ब्राह्मण युग के प्रधान देवता अग्नि, वायु और सूर्य, तीन भावरूप सत्ताएँ काल, प्राण और अन्न तथा तीन लोकप्रिय देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये सभी ब्रह्म के रूप बताये गये हैं। इस उपनिषद् का अन्तिम भाग परिशिष्ट रूप है, जिसमें विश्व की सृष्टि का उपाख्यान वर्णित है। इसमें प्रकृति के सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सम्बन्ध बताया गया है। इसमें ऋग्वैदिक एवं सांख्य के सिद्धान्तों का समन्वय है।

घ) श्वेताश्वतरोपनिषद्

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध श्वेताश्वतर संहिता का एक अंश है। यह कठोपनिषद् के बाद की रचना है, क्योंकि उससे बहुत सा अंश इसमें लिया गया है, यहाँ तक कि कुछ वाक्य ज्यों के त्यों प्रस्तुत हैं। इसमें कुल छः अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय में हंस, त्रैतवाद, माया, क्षर-अक्षर, सत्य और तप से आत्मदर्शन है।

द्वितीय अध्याय में योग, योग-विधि, ब्रह्मतत्त्व का विस्तृत विवेचन है।

तृतीय अध्याय में रुद्र विश्वरूप, जीव का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप वर्णित है।

चतुर्थ अध्याय में एकेश्वरवाद, त्रैतवाद, प्रकृति, माया-मायी शिव ब्रह्मस्वरूप का वर्णन है।

पंचम अध्याय में क्षर-अक्षर, कपिल ऋषि, जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन है।

षष्ठ अध्याय में ब्रह्म के अनेक नाम, हंस, ईश्वर प्रकृति एवं जीव का नियन्ता एवं गुरु भक्ति प्रतिपादित है।

इसमें भक्ति तत्त्व का विवेचन, सांख्य दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। यह प्रकृति ही ब्रह्म की माया का दूसरा रूप है। इसमें प्रकृति को माया और महेश्वर को मायी कहा गया है। क्या वह माया वेदान्त की माया से भिन्न है, वेदान्त के अनुसार जगत् मिथ्या है, किन्तु इस उपनिषद् में जगत् के मिथ्यात्व की कल्पना नहीं है। कल्पान्त में ब्रह्म के द्वारा ही जगत् की सृष्टि और उसका प्रलय होता है। इस उपनिषद् में शिव को परमेश्वर कहा गया है। यह शिव ही समस्त प्राणियों में व्याप्त है और उसके सम्बन्ध में ज्ञान होने पर समस्त बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है।

4.5 सामवेद के उपनिषद्

वैदिक वाङ्मयानुसार मुक्तिकोपनिषद् प्रतिपादित सामवेद से सम्बन्धित 16 उपनिषदें निम्नवत् हैं–

केनछान्दोग्यारुणिमैत्रायणिमैत्रेयीवज्रसूचिकायोगचूडामणि–
वासुदेवमहत्संन्यासाव्यक्तकुण्डिकासावित्रीरुद्राक्षजाबालदर्शन–
जाबालीनां सामवेदगतानां षोडशसंख्याकाना–
मुपनिषदानामाप्यायन्त्विति शान्तिः ।। मुक्तिकोपनिषद् 53।।

1.केन, 2.छान्दोग्य, 3.आरुणेय, 4.मैत्रायणि, 5.मैत्रेय, 6.वज्र-सूचि, 7.योगचूडामिण, 8. वासुदेव, 9.महत्, 10.संन्यास, 11.अव्यक्त, 12.कुण्डिक, 13.सावित्री, 14.रुद्राक्ष, 15. जाबालदर्शन, 16. जाबाल।

यहाँ प्रमुख उपनिषदों के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डाला जायेगा।

4.5.1 केन उपनिषद्

इस उपनिषद् को तवलकार उपनिषद् और जैमिनीय उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें चार खण्ड हैं। प्रथम दो खण्ड पद्यात्मक और शेष दो गद्यात्मक हैं।

प्रथम खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय रूप को बताते हुए पंच ज्ञानेन्द्रिय ब्रह्म से परे हैं किन्तु पंच कर्मेन्द्रिय इसी की सत्ता से कार्य करती हैं, जिसे निर्गुण ब्रह्म कहा जाता है, की चर्चा की गई है।

द्वितीय खण्ड में ब्रह्म अवर्णनीय और अनिर्वचनीय, ब्रह्मज्ञान से जीवन सार्थकता तथा अज्ञान से निरर्थकता आदि की चर्चा है।

तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में उमा हैमवती के सुमधुर आख्यान सहित अन्य विषयों की भी चर्चा है।

4.5.2 छान्दोग्य उपनिषद्

सामवेद की तवलकार शाखा का छान्दोग्य ब्राह्मण है जिसमें दस अध्याय हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को 'छान्दोग्योपनिषद्' कहा जाता है। इस उपनिषद् में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं। प्रथम अध्याय में तेरह खण्ड, द्वितीय में चौबीस, तृतीय में उन्नीस, चतुर्थ में सत्रह, पंचम में चौबीस, षष्ठ में सोलह, सप्तम में छब्बीस और अष्टम अध्याय में पन्द्रह खण्ड हैं। इसमें गूढ दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण आख्यायिकाओं के रूप में किया गया है।

प्रथम अध्याय में ओउम् (ॐ), उद्गीथ एवं साम के गूढ रहस्यों का मार्मिक विवेचन है।

द्वितीय अध्याय में ओउम् की उत्पत्ति, पंचविध सामोपासना, सप्तविध साम, त्रयी विद्या, धार्मिक जीवन की तीन अवस्थाएँ तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य एवं यतिधर्म का विवेचन है। इस अध्याय के अन्त में शैव उद्गीथ का विवेचन है।

तृतीय अध्याय में वैश्वानर ब्रह्म का प्रतिपादन है, जिसका व्यक्त रूप सूर्य है। सूर्य की देवमधु रूप में उपासना, गायत्री का वर्णन, अङ्गिरस द्वारा देवकीनन्दन कृष्ण को अध्यात्म-शिक्षा और अन्त में अण्ड से सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल की कथा, व रैक्व का दार्शनिक तथ्य, उपकौशल को जाबाल द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश आदि का विस्तृत विवेचन है।

पंचम अध्याय में बृहदारण्यक के षष्ठ अध्याय की दोनों कथाओं का एक प्रकार से आवर्तन है। इसमें श्वेतकेतु और प्रवहण जैबलि का दार्शनिक संवाद तथा कैकय अश्वपति के सृष्टि विषयक तथ्यों का विशद् वर्णन किया गया है, जिनमें छः दार्शनिक विद्वानों के आत्म विषय चिन्तनों का विवरण है।

षष्ठ अध्याय में श्वेतकेतु का आख्यान वर्णित है, जिसमें उद्दालक आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है। श्वेतकेतु ने वेदों का अध्ययन तो कर लिया, किन्तु ब्रह्मज्ञान नहीं सीखा था, तब उसके पिता आरुणि ने उस ब्रह्म से ही चराचर जगत् की उत्पत्ति का वृत्तान्त सुनाते हुए अन्न, जल और तेज से मन, प्राण और वाणी की उत्पत्ति बतायी है। तदनन्तर आरुणि ने श्वेतकेतु से वटवृक्ष का फल तोड़ने को कहा। फल तोड़ने पर उसमें से नन्हें-नन्हें बीज निकले, तब पिता ने उस बीज को भी फोड़ने को कहा। बीज के फोड़े जाने पर आरुणि ने कहा पुत्र तुमने इसमें क्या देखा है? पुत्र ने कहा कि मुझे कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा है। तब पिता ने पुत्र को समझाया कि पुत्र जिस बीज के भीतर तुम्हें कुछ भी नहीं दिखायी देता है, उसी में वह महान् वटवृक्ष है। इसी प्रकार ब्रह्म में ही सारा चराचर जगत् निहित है। **'तत्त्वमसि'** यह महावाक्य उपनिषदों के चार महावाक्यों में एक है। इस महावाक्य की व्याख्या करते हुए आरुणि श्वेतकेतु से कहते हैं कि वह अणु जो शरीर में आत्मा है, सत् है, सर्वात्मा है, वही आत्मा है, वही वह सत् है। श्वेतकेतु पुनः प्रश्न करता है कि वह आत्मा द्रष्टव्य क्यों नहीं है? इसका उत्तर देते हुए आरुणि कहते हैं कि जिस प्रकार जल में नमक डाल दिया जाये तो वह उसमें ऐसा घुल जाता है कि वह दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार आत्मा सब में व्याप्त है, किन्तु वह इस प्रकार उनमें घुल-मिल गयी है कि वह अलग से दिखायी नहीं देती है।

सप्तम अध्याय में नारद और सनत्कुमार का वृत्तान्त है। नारद ब्रह्मविद्या की शिक्षा के लिए सनत्कुमार के पास जाते हैं। सनत्कुमार ने नाम, वाक्, मन, संकल्पन, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मरण, आशा, प्राण में से प्रत्येक को उत्तरोत्तर बढकर बताया और कहा कि सब कुछ प्राण में ही समाहित है और प्राण के न रहने पर मनुष्य का ऐहलौकिक जीवन नहीं रह जाता। अन्त में ब्रह्म के अन्तिम रूप भूमन् (असीम) का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि भूमा ही सब कुछ है, **"यो वै भूमा तत् सुखम्"** वही शरीर में स्थित आत्मा है।

अष्टम अध्याय में शरीर और विश्व में स्थित आत्मा की तीन अवस्थाओं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति का भी निर्देश है। तृतीय अवस्था में ही आत्मा के सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है। इस अध्याय के अन्त में इन्द्र और असुरराज विरोचन की कथा वर्णित है। इस आख्यान में आत्म प्राप्ति के व्यावहारिक उपायों का संकेत किया गया है।

4.6 अथर्ववेद के उपनिषद्

अथर्ववेद से सम्बन्धित 31 उपनिषदें हैं।

प्रश्नमुण्डकमाण्डूक्याथर्वशिरोऽथर्वशिखाबृहज्जाबाल–
नृसिंहतापनीनारदपरिव्राजकसीताशरभमहानारायण–
रामरहस्यरामतापनीशाण्डिल्यपरमहंसपरिव्राजक–
अन्नपूर्णासूर्यात्मपाशुपतपरब्रह्मत्रिपुरातपनदेवीभावना–
ब्रह्मजाबालगणपतिमहावाक्यगोपालतपनकृष्णहयग्रीव–
दत्तात्रेयगारुडानामथर्ववेदगतानामेकत्रिंशत्संख्याकाना–
मुपनिषदां भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः। मुक्तिकोपनिषद् 54।।

1.प्रश्न, 2.मुण्डक, 3.माण्डूक्य, 4.अथर्व-शिर, 5.अथर्व-शिख, 6.बृहज्जाबाल, 7.नृसिंहतापनी, 8.आत्मबोध, 9.परिव्रात् (नारदपरिव्राजक), 10.सीता, 11.शरभ, 12.महानारायण, 13.रामरहस्य, 14.रामतापिण, 15.शाण्डिल्य, 16.परमहंस-परिव्राजक, 17.अन्नपूर्णा, 18.सूर्य, 19.आत्मा, 20.पाशुपत, 21.परब्रह्म, 22.त्रिपुरातपिन, 23.देवि, 24.भावन, 25.भस्म, 26.गणपित, 27.महावाक्य, 28.गोपाल-तपिण, 29.कृष्ण, 30.हयग्रीव, 31.दत्तात्रेय, 32. गारुड।

यहाँ प्रमुख उपनिषदों के वर्ण्य-विषय पर प्रकाश डाला जायेगा।

4.6.1 प्रश्नोपनिषद्

इस उपनिषद् का प्रारम्भ प्रश्नों से होता है। अतः इसका नाम **'प्रश्नोपनिषद्'** पड़ गया। ब्रह्मविद्या ज्ञान के लिये छः ऋषि पिप्पलाद मुनि से छः प्रश्न पूछते हैं। यह अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखा से सम्बन्धित है, जिसके मुख्य ऋषि पिप्पलाद ही हैं। पिप्पलाद ऋषि जो केवल पीपल के फलों को खाकर जीवित रहे, इसलिए उनका नाम पिप्पलाद पड़ गया। इसमें ब्रह्मविद्या से सम्बन्धित प्रश्न पूछे गए हैं– (1) समस्त प्रजा कहाँ से और कैसे उत्पन्न हुई? (2) प्रजा को धारण करने वाले देवता कितने हैं? (3) प्राणों की उत्पत्ति कहाँ से होती है? (4) आत्मा की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति –इन तीन अवस्थाओं का क्या रहस्य है? (5) ओम् की उपासना का क्या स्वरूप है? (6) षोडश कला सम्पन्न पुरुष का क्या स्वरूप है? आदि इस उपनिषद् के प्रतिपादित विषय हैं।

4.6.2 मुण्डकोपनिषद्

मुण्डक शब्द का अर्थ है– मुण्डित (मुण्डन) हुए सिर वाला। सम्भवतः सिर मुडाने वाले लोगों के किसी सम्प्रदाय से इसका सम्बन्ध रहा हो। यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें तीन मुण्डक एवं छः खण्ड हैं। इसमें ब्रह्मविद्या के उपदेश की प्रधानता है। इसमें बताया गया है कि ब्रह्मा ने अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया है। इसमें याज्ञिक अनुष्ठान और कर्मकाण्ड की हीनता दिखाई गई है, जबकि ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है। सांख्य और वेदान्त के सिद्धान्त भी इसमें प्रतिपादित किये गये हैं। द्वैतवाद के सिद्धान्तों का प्रसिद्ध मन्त्र भी इसमें दिया गया है–'**द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः....** ।' इसके अतिरिक्त अशोक स्तम्भ में अंकित वाक्य '**सत्मेव जयते नानृतं**' (3.1.6) यहीं से लिया गया है।

4.6.3 माण्डूक्योपनिषद्

यह आकार में छोटा उपनिषद् है, किन्तु महत्त्व इसका सबसे अधिक है। इसमें केवल 12 वाक्य या खण्ड हैं। इसमें ओंकार की विस्तृत व्याख्या की गई है। चैतन्य की चार अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और व्यवहार) का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार आत्मा को भी चार प्रकार का बताया गया है– वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ, प्रपञ्चोपदेशम्। वेदान्त-दर्शन का प्रासाद इसी उपनिषद् पर खड़ा है।

4.7 सारांश

भारतीय धर्म, संस्कृति और दर्शन का मूल स्रोत वेद हैं। वेद के ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत उपनिषद् ग्रन्थ आते हैं। ये वेद का एक महत्त्वपूर्ण और अन्तिम भाग हैं। उपनिषदों में ऋषियों के दार्शनिक चिन्तन की विशेष रूप से अभिव्यक्ति हुई है। उपनिषदों के उत्कृष्ट चिन्तन की पृष्ठभूमि वैदिक वाङ्मय के प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता से ही प्रारम्भ हो जाती है। वेदों का अन्तिम भाग या वेदों का सार होने से उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। वेदान्त शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग माण्डूक्योपनिषद् में ही हुआ है। बाद में वेदान्त एक दर्शन विशेष का नाम भी हो गया जिनका आधार उपनिषद् हैं। गुप्त ज्ञान के प्रतिपादक होने से उपनिषदों को 'गुह्य' और 'रहस्य' नाम से भी जाना जाता है। सद् धातु में क्विप् प्रत्यय से उप और नि उपसर्गों के साथ 'उपनिषद्' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है– (गुरु के) समीप सविनय बैठना। इसी आधार पर उपनिषद् वह ज्ञान है जो गुरु के पास सविनय बैठकर प्राप्त किया जाता है। उपनिषदों की संख्या सुनिश्चित नहीं है। इनका 10 से लेकर 223 तक उल्लेख मिलता है। मुक्तिकोपनिषद् के आधार पर सामान्य रूप से भारतीय परम्परा में 108 उपनिषदों की चर्चा की जाती है। मुक्तिकोपनिषद् में ही दस प्रमुख उपनिषदों के नाम भी दिये गये हैं। प्राचीन काल से ही उपनिषदों पर अनेक भाष्य लिखे गये, जिनमें अद्वैतवादी शंकराचार्य का भाष्य प्रमुख हैं जो कि 10 प्रधान उपनिषदों पर लिखा गया है तथा इन्हीं के भाष्य मे तीन और उपनिषद् के नाम आने के कारण 13 प्रमुख उपनिषदें जानी जाती हैं। उपनिषद् ग्रन्थ भारतीय तत्त्वज्ञान और धार्मिक सिद्धान्तों के मूलस्रोत हैं। इनसे मानव की चेतना ऊर्ध्वगामी होती है। इनका उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति है। ईशावास्योपनिषद् को सम्पूर्ण गीता का मूल माना जाता है। शोपेनहावर ने उपनिषदों को परम शान्ति के साधन बताया था। कर्म, उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्मविद्या या आत्मविद्या है। उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा, दोनों की एकता, आत्मप्राप्ति के साधन, आवश्यकता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

आत्मविद्या से सम्बद्ध कुछ दार्शनिक, नैतिक और बौद्धिक विचार भी उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। विद्या, अविद्या, प्रेयस्, श्रेयस्, ओम्, योग, प्राण आदि पर इनमें विचार किया गया है।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड वाराणसी 1973 ई. प्रथम संस्करण।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति – आचार्य वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन प्रयागराज (इलाहाबाद) 1969 ई. प्रथम संस्करण।
3. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2000 ई.।
4. वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग द्वितीय – आचार्य भगवद्दत्त ,अनुसंधान विभाग डी.ए.वी कॉलेज लाहौर 1927 ई. प्रथम संस्करण।
5. वैदिक साहित्य – पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी 1950 ई. प्रथम संस्करण।
6. वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः – आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन 1988 ई. प्रथम संस्करण।
7. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग 1, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर प्रकाशन 1978 ई. प्रथम संस्करण।
8. वैदिक साहित्य का इतिहास – प्रो. पारसनाथ द्विवेदी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी प्रकाशन 2009 ई. प्रथम संस्करण।
9. वैदिक साहित्य – प्रो.किरीट जोशी, सान्दीपनि विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन।

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. उपनिषदों के रचना काल पर प्रकाश डालिए।
2. ईशोपनिषद् पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
3. उपनिषदों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. आचार्य शंकर द्वारा कृतभाष्य उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

   (क) ऐतरेय उपनिषद्, (ख) केन उपनिषद्, (ग) प्रश्नोपनिषद्, (घ) माण्डूक्योपनिषद्।

इकाई 5 वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक काल की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवस्था से अवगत हो सकेंगे।
- वैदिक काल के अनन्तर विभिन्न परिदृश्यों में आये परिवर्तनों को समझ सकेंगे।
- वैदिक काल के आधार पर चिन्तन कर वर्तमान स्थिति की तुलना कर सकेंगे।
- वैदिक काल के विविध विषयी धरातलों पर अपना पक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सामग्री **वैदिक साहित्य** में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। वैदिककालीन भूगोल में जहाँ उस समय **समुद्र** था, वहाँ आज **मरुस्थल** तथा **जनसंचार** है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था **वर्णाश्रम** नियमों में आबद्ध थी। अर्थ का आधार मुख्य रूप से **कृषिकर्म** तथा **पशुपालन** था। राजनीतिक व्यवस्था जनसमूह के कल्याण की दृष्टि से संचालित थी। उसका मुख्य कार्य जनसमूह की सुविधाओं का विकास एवं उन्नयन था। प्रस्तुत इकाई में आप वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के विषय में अध्ययन करेंगे।

5.2 वैदिककालीन भौगोलिक जीवन

वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणों में उद्धृत नदियों, पर्वतों, वनों आदि के नामोल्लेख से तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण भी तत्कालीन नदियों, पर्वतों आदि की वास्तविक स्थिति भी अधिकांश रूप में परिवर्तित हो गई है। एक नदी जहाँ उस काल में बहती थी उसका प्रवाह मूल स्थान से हटकर अत्यधिक दूर चला गया है। ऐसी स्थिति में वर्तमान नदियों, पर्वतों आदि की स्थिति के आधार पर उनकी सही स्थिति का अनुमान लगाना कठिन कार्य है। यहाँ **संहिताओं** तथा **ब्राह्मण ग्रन्थों** में उपलब्ध सन्दर्भों के आलोक में संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है –

5.2.1 नदियाँ

ऋग्वेद (10.75) के **नदीसूक्त** के प्रथम मन्त्र में 42 नदियों की सत्ता का उल्लेख किया गया है– **सप्तसप्त त्रेधा**। किन्तु इस सूक्त के पाँचवें तथा छठें मन्त्र में नामशः केवल **19 नदियों** का ही उल्लेख है। प्रकृत का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है –

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया।। ऋग्वेद (10.75.5)

1. **गङ्गा** – ऋग्वेद(10.75.5) के अतिरिक्त गङ्गा का अन्य मन्त्र में उल्लेख नहीं है। ऋग्वेद (6.45.3) में **उरुकक्ष** के विशेषण के रूप में **गांग्य** पद का प्रयोग किया गया है। शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) में **भरत दौष्यन्ति** के यमुना और गंगा पर विजय का उल्लेख है। इससे ज्ञात है कि यहाँ तक भरतों अथवा कुरुओं के राज्य की सीमा थी। तैत्तिरीय आरण्यक (2.20) में गंगा तथा यमुना के मध्य रहने वाले लोगों की प्रशंसा की गई है।

2. **यमुना** – नदीसूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में इस नदी का दो बार उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद (5.52.17) में **मरुतों** से यमुना के तट पर **गोधन** तथा **अश्वधन** प्राप्त करने का उल्लेख है। ऋग्वेद (7.18.19) में यमुना के तट पर अज, शिशु तथा यक्षुओं के साथ **सुदास के युद्ध** का वर्णन है। अथर्ववेद (4.9.10) में यमुना के **आंजन** का उल्लेख किया गया है। संभवतः इसी आंजन के कारण **यमुना का जल काला** माना गया है। शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.11) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (8.23) में यमुना पर **भरतों की विजय** का उल्लेख है। वैदिक साहित्य के कतिपय स्थलों में यमुना के तट पर **शाल्वों** के निवास का उल्लेख प्राप्त होता है।

3. **सरस्वती** – ऋग्वेद (2.41.16) में इसे नदियों में सर्वश्रेष्ठ (नदीतमा) तथा ऋग्वेद (7.36.6) में नदियों की माता **(सिन्धुमाता)** कहा गया है। वाजसनेयी संहिता (3.4. 11) में इसकी सहायक 5 नदियों का उल्लेख है। ऋग्वेद में सरस्वती के लिये एक स्वतन्त्र सूक्त (6.61) सम्बोधित है। वैदिक काल में यह **सरस्वत्** नामक समुद्र में जाकर मिलती थी, किन्तु पृथिवी पर एक अद्भुत प्राकृतिक स्थिति उत्पन्न होने के कारण उत्तरवैदिक काल में वह **सरस्वत्** समुद्र सूख गया और सरस्वती उसी रेगिस्तान में विलीन हो गई। जिस स्थान पर वह लुप्त हो गई उस स्थान का नाम पंचविंश बाह्मण (15.10.6) तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (4.26) में **विनशन** बताया गया है।

4. **शुतुद्री** – ऋग्वेद (3.33) के सम्पूर्ण सूक्त में विपाट् और शुतुद्री के संगम पर भरतों के साथ विश्वामित्र के जाने और उन्हें पार करने के लिये उन नदियों से प्रार्थना करने का उल्लेख है। उत्तर वैदिक काल में इसका **शतद्रु** के नाम से उल्लेख है। आधुनिक नाम **सतलज** है। इसका मार्ग परिवर्तित होता रहा है।

5. **परुष्णी** – ऋग्वेद (7.18.8-9) में दश राजाओं के विरुद्ध सुदास के युद्ध के प्रसंग में इसका उल्लेख है। ऋग्वेद (8.74.15) में परुष्णी के लिये **महेनदि** सम्बोधन प्रयुक्त किया गया है। यहीं पर **श्रुतर्वा** नामक राजा ने अश्व का दान किया था। ऋग्वेद (4.22.2) तथा (5.42.9) में भी परुष्णी का उल्लेख है। सम्भवतः इसके तट पर भेड़ें अधिक पाली जाती रही हों इसलिये उसे ऐसा कहा गया है। यास्क ने इस नदी का उल्लेख **इरावती** के नाम से किया है। इरावती का ही विकृत नाम **रावी** है जो पंजाब (आधुनिक पाकिस्तान) की एक प्रसिद्ध नदी है।

6. **असिक्नी** – असिक्नी का अर्थ यास्क के अनुसार **काला** है (निरुक्त 9.26)। सम्भवतः इसका जल काला होने के कारण इसको इस नाम से सम्बोधित किया गया है। इसी नदी का आगे **चन्द्रभागा** के नाम से उल्लेख प्राप्त होता है जो और विकृत होकर **चेनाब** के नाम से आज प्रसिद्ध है। ऋग्वेद (8.20.25) में सिन्धु के साथ असिक्नी का उल्लेख है, जिससे होकर आने वाले मरुतों को **भेषजरूप** बताया गया है।

7. **मरुद्वृधा** – रॉथ के अनुसार मरुद्वृधा उस नदी का नाम है जो वितस्ता और परुष्णी के मिलकर बहने से बनती है। एक अन्य विद्वान् ने **मरुद्वृधा** को **मरुवर्ध्वन** माना है, जो कश्मीर की एक छोटी नदी है और उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है तथा **किस्तवाड़ के पास चेनाब** के उत्तर तट पर मिल जाती है।

8. **वितस्ता** – यास्क (निरुक्त 9.26) ने इस नदी का उल्लेख किया है। बिहट कश्मीरी में **बेठ** के नाम से प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण तट पर स्थित **झेलम** नामक स्थान के आधार पर आज यह **झेलम** नदी के नाम से जानी जाती है।

9. **आर्जीकीया** – निरुक्त (9.26) के आधार पर **ऋजीक/आर्जीक** पर्वत से उत्पत्ति अथवा ऋजुगामिनी से यह नामकरण हुआ। इसका उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29, 9.113.2) में भी प्राप्त होता है।

10. **सुषोमा** – ऋग्वेद (8.7.29, 8.64.11) में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह **सुषोम** पर्वत से निकलती है। इसका तादात्म्य **सोहान** नदी (सिन्धु की सहायक) से किया जा सकता है।

11. **सिन्धु** – ऋग्वेद (1.122.6, 4.54.6) एवं अथर्ववेद (3.13.1) के अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य नदियों की अपेक्षा यह अधिक शक्तिमती एवं समृद्धिशालिनी थी। यह पश्चिम में **परावत** या **अपरा** (वर्तमान अरब सागर) में गिरती थी।

12. **तृष्टामा** – यह **सिन्धु** की प्रथम सहायक नदी है। यह आधुनिक **गिलगिट** ही है।

13. **सुसर्तु**– **द्रास** एवं **पक्षुभ** इसकी सहायक नदियाँ मानी जाती हैं। इसे **सुरु** अथवा **घोरवन्द** नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

14. **रसा** – वर्तमान नाम **शेबक**, यह कश्मीर की नदी है। **देवशुनी सरमा** के इस नदी को पार किये जाने का ऋग्वेद (10.108.1-2) में उल्लेख प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध **पंजशीर** नदी से भी किया जाता है।

15. **कुभा** – इसका सन्दर्भ ऋग्वेद (5.53.9) में प्राप्त होता है। साथ ही इसका सम्बन्ध **काबुल** नदी से भी माना जाता है। **कुनर** एवं **पंजकोरा** इसकी सहायक नदियाँ हैं।

16. **श्वेती** – इसका तादात्म्य काबुल की सहायक नदी **कुनर** से किया जाता है।

17. **कुमु** – इसका सम्बन्ध **कुरुम** नदी से किया गया है, जो सिन्धु की सहायक नदी है।

18. **मेहत्नु** – सम्भवतः यह **कुमु** की सहायक नदी है। अधुना **सवान** नदी से इसकी पहचान की जा सकती है।

19. **गोमती** – यह **अफगानिस्तान** की नदी है। इसका सम्बन्ध आधुनिक **गोमाल** नदी से किया जाता है। तट पर गायों के रहने के कारण **गोमती** नामकरण हुआ माना जाता है।

20. **दृषद्वती** – सरस्वती की सहायक नदी, यह अधुना **घग्घर** अथवा **चितंग** हो सकती है। इसके तट पर **भरतों के यज्ञ** का उल्लेख ऋग्वेद (3.23.4) में प्राप्त होता है। यह **पथरीली नदी** वर्षावहा यदा कदा **सोदका** एवं **अनुदका** भी रहती थी।

21. **आपया** – ऋग्वेद (3.23.4) में इसका उल्लेख सरस्वती की सहायक नदी के रूप में प्राप्त होता है। यह **कुरुक्षेत्र** की नदी है।

22. **राका** – ऋग्वेद (5.52.12) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। यह सरस्वती की सहायक नदी थी। इसका सम्बन्ध **आधुनिक रावी** के साथ किया जाता है।

23. **बृहद्दिवा** – ऋग्वेद (5.42.12) में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यह भी **सरस्वती की सहायक** नदी थी।

24. **विपाश्** – ऋग्वेद (3.33) में **विपाट्/विपाश्** का उल्लेख प्राप्त होता है। विश्वामित्र के पुत्रों द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी होकर वसिष्ठ ने अपने को रस्सी से बाँधकर इसमें छलाँग लगाई थी, किन्तु प्रवाह तीव्र होने के कारण बन्धन टूट गये और वसिष्ठ बच गये।

25. **गौरी** – ऋग्वेद (1.164.41, 9.12.3) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। इसके तट पर **सोम के उगने** का भी उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। यह **कुभा** वर्तमान काबुल नदी की सहायक है। इसका सम्बन्ध **पंजकोरा** से किया जाता है।

26. **सुवास्तु** – ऋग्वेद (8.19.37) में इसका सन्दर्भ प्राप्त होता है। यह **स्वात** के नाम से वर्तमान में ख्यात है। इसके तट पर **सफेद कम्बल** तथा **पाण्डु कम्बल** के उत्पादन का भी वर्णन विविध सन्दर्भों से प्राप्त होता है।

27. **अनितभा** – ऋग्वेद (5.53.9) में रसा तथा कुभा के साथ इसका उल्लेख प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध **अलिंगर** नदी से किया जा सकता है जो **काबुल** की सहायक नदी है।

28. **सरयु** – ऋग्वेद (4.3.18, 4.93.9, 10.64.9) में सन्दर्भ कुछ स्थलों पर प्राप्त होते है। वैदिक सरयु सिन्धु प्रदेश की नदी है। इस नाम की एक नदी अयोध्या के साथ बहती है दूसरी बलिया के पूर्व में गंगा में मिल जाती है। इसका विकृत नाम **सिरितोइ** भी है।

29. **सदानीरा** – शतपथ ब्राह्मण (1.4.1.14) के अनुसार यह कोशल तथा विदेह राज्यों की सीमा थी। इसका एकीकरण वर्तमान **गण्डकी** नदी से किया जा सकता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद में **शिफा, अंजासी, कुलिशी, विवाली, वितस्थाना, हरियूपिया, यव्यावती, प्रयियु, वयियु, श्वेतयाबरी, अंशुमती** तथा **अश्मन्वती** प्रभृति नदियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

5.2.2 समुद्र

ऋग्वेद में समुद्र के लिये **अर्णव** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। विविध स्थलों पर नदियों के समुद्र में मिलने का उल्लेख प्राप्त होता हैं। अथर्ववेद (5.78.8) में समुद्र से **रत्न** प्राप्त होने का उल्लेख है। ऋग्वेद (9.33.6, 10.47.2, 10.136.5, 7.6.7) में चार समुद्रों **पूर्व, अपर, पर** एवं **अवर** का स्पष्टतया वर्णन है। **सरस्वत्** एवं **शर्यणावत्** का उल्लेख ऋग्वेद में (7.95.3, 7.64.11) तथा अन्य स्थलों पर बहुत्र प्राप्त होता है।

5.2.3 पर्वत

ऋग्वेद में सामान्यतया पर्वतों का उल्लेख अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है, जिससे तत्कालीन भौगोलिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रसंग मे उल्लेखनीय प्रमुख पर्वत अधोलिखित हैं –

1. **हिमवन्त** – ऋग्वेद (10.121.4) तथा अन्य संहिताओं में हिमवन्त का विशेष रूप से उल्लेख है। यह पर्वत जिस प्रकार आज भारत की उत्तरी सीमा निर्धारित करता है और देश की रक्षा करता है उसी प्रकार वैदिक काल में भी वह **सप्त सिन्धु प्रदेश** की **उत्तरी सीमा** निर्धारित करता था। यह पर्वत ऊँचा होने के कारण सदा हिम से आच्छादित रहता है। यह अनेक नदियों का उद्गम-स्थल भी है।

2. **मूजवन्त** – ऋग्वेद तथा अन्य संहिताओं में इस पर्वत का उल्लेख है। ऋग्वेद (10.34.1) में **सोम** को **मूजवत्** पर्वत से उत्पन्न होने कारण **मौजवत** कहा गया है। अथर्ववेद में मूजवत् पर्वत को बहुत दूर बताया गया है और यह कामना की गई है कि रोगी का बुखार उसे छोड़कर मूजवत् पर चला जाये। यहाँ के रहने वाले लोगों को भी **मूजवन्त** कहा गया है। अथर्ववेद में मूजवतों का उल्लेख **महावृष, गन्धारि** तथा **वल्हीकों** के साथ किया गया है।

3. **त्रिककुद** – इस पर्वत से उत्पन्न **आंजन** का प्रयोग **सोमयाग में यजमान-दीक्षा** के अवसर पर किया जाता था। यतो हि इस **पर्वत से आंजन** निकलता था, अतः **आंजन का नाम ही त्रिककुद** पड़ गया था। अथर्ववेद (4.9.8) में स्पष्टतया पर्वतों में श्रेष्ठ **त्रिककुद** को **आंजन का पिता** कहा गया है। अथर्ववेद (4.9.6-10) में त्रिककुद से उत्पन्न आंजन को समस्त **यातुधानों को नष्ट करने वाला** तथा **देवांजन** कहा गया है। **त्रिककुद** नाम से ही यह प्रतीत होता है कि इस पर्वत की **तीन चोटियाँ** या पहाड़ियाँ थीं। यह वैदिक **यह्ववती** नदी के पूर्व में स्थित था। इस पर्वत का तादात्म्य अफगानिस्तान के दक्षिणी भाग में स्थित पहाड़ियों से किया जा सकता है जो सिन्धु के पश्चिम तट से उत्तर दक्षिण की ओर फैला हुआ है।

4. **शर्यणावत्** – शर्यणावत् नामक समुद्र जो सम्पूर्ण कश्मीर को अपने अन्दर लिये हुए था, उसके चारों ओर स्थित पर्वत की भी यही संज्ञा है। आज **कश्मीर घाटी के चारों ओर जो पहाड़ हैं** उन्हीं से इसका तादात्म्य किया जा सकता है।

5. **सुषोम** – इसका उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29) में प्राप्त होता है। यहाँ से **सुषोमा नदी** निकलती है। इसलिये उस पर्वत को **सुषोम** कहा गया है। **सुषोमा** नदी **मूरी** की पहाड़ियों से निकलती है जो इस नाम के नगर के दक्षिण में है।

6. **आर्जीक** – इस पर्वत का उल्लेख ऋग्वेद (8.7.29, 9.113.2) में प्राप्त होता है। इसी पर्वत से **आर्जीकीया** नदी निकलती है। इसका तादात्म्य **मूरी के उत्तर** में स्थित पर्वत श्रृङ्खलाओं से किया जा सकता है।

क्रौंच, महामेरु तथा **मैनाकादि** इन पर्वतों का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में प्राप्त होता है।

5.2.4 अरण्य

ऋग्वेद तथा अन्य स्थलों में वनों का अनेकत्र उल्लेख है। ऋग्वेद (1.143.5) के एक मन्त्र में वर्णित है कि– **अग्नि वनों को उसी प्रकार साफ करता है जिस प्रकार कोई योद्धा अपने शत्रुओं को**। संहिताओं में प्राप्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि वैदिक आर्य जहाँ गाँवों एवं जनपदों में निवास करते थे, वहाँ से बाहर वन भी थे। वनों से ही यज्ञार्थ समिधायें तथा विविध प्रकार के काष्ठ प्राप्त होते थे। रात्रि के समय वनों में जब आग लगती थी, तत्समय अग्नि का प्रचण्ड रूप दिखाई पड़ता था। ऋग्वेद के **अरण्यानी सूक्त** (10.146) में आलंकारिक भाषा में अरण्य का वर्णन किया गया है। अरण्य से **आंजन, गन्ध, बिना कृषि के फल** आदि वस्तुयें प्राप्त होती थीं। ऋग्वेद (10.90.8) में **आरण्य** पशुओं का उल्लेख है। ऋग्वैदिक काल में सम्पूर्ण गंगा प्रदेश पूर्व समुद्र के रूप में जलमग्न था। पर्वतों से निकलकर बहने वाली नदियों के द्वारा लाई गई मिट्टी से धीरे-धीरे समुद्र भरता गया। कुछ समय तक तो वह स्थल **दलदली**

मिट्टी के रूप में रहा, किन्तु कालान्तर में वह भाग विभिन्न वनस्पतियों के स्वयं उत्पन्न होने के कारण **गहन अरण्य** बन गया। इन्हीं वनों एवं जंगलों को साफ कर आर्य-सभ्यता का धीरे-धीरे विस्तार होता रहा। पंचविंश ब्राह्मण (25.3.6) में **खाण्डव वन** के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। साथ ही तैत्तिरीय आरण्यक (5.1.1) में इसका उल्लेख **कुरुक्षेत्र की सीमा** के रूप में किया गया है।

5.2.5 धन्वन् (मरुस्थल)

ऋग्वेद (2.38.7, 3.45.1) तथा अथर्ववेद (5.13.1) में रेगिस्तान के लिये **धन्वन्** शब्द का बहुधा उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद (10.187.2) में रेगिस्तान के पार **परावत्** समुद्र से अग्नि के चमकने का उल्लेख है। ऋग्वेद (5.83.10) में **पर्जन्य द्वारा रेगिस्तान को पार** करने के योग्य बनाने का उल्लेख है। गर्मी के दिनों में रेगिस्तान चलने के योग्य नहीं होता। वर्षा में वह चलने के योग्य बन जाता है। ऐतरेय बाह्मण (2.19) में **रेगिस्तान में प्यास से** लोगों के मरने का उल्लेख है। रेगिस्तान में कहीं भी प्राप्त जल के स्रोत की महत्ता का उल्लेख ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के विविध मन्त्रों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद (10.86.20) में कई योजन तक फैले रेगिस्तान का उल्लेख है।

5.2.6 देश

ऐतरेय ब्राह्मण (8.3) ने राजा के **महाभिषेक** के प्रसंग में इस आर्य मण्डल को **पाँच भागों** में विभक्त किया है। पूर्व के लोग तथा देश, दक्षिण, पश्चिम में नीच्य तथा अपाच्य (पश्चिम में रहने वाले लोग) था। उत्तर हिमालय से उस पार **उत्तर कुरु** और **उत्तर मद्र** संज्ञक जनपदों की स्थिति थी। सभी के मध्य प्रतिष्ठित मध्यम देश में कुरु पाँचालों का निवास था। प्राप्त सन्दर्भानुसार प्रमुख देश अधोलिखित हैं –

1. **मद्र** – यह वर्तमान पंजाब का ही एक छोटा भाग था। इसकी राजधानी **शाकल** थी, जो आजकल का **स्यालकोट** है। इसी मण्डल में यह देश था। हिमालय के उत्तर में (परेण हिमवन्तम्) **उत्तरमद्र** नामक जनपद का उल्लेख **उत्तर कुरु** के साथ ऐतरेय ब्राह्मण (8.3.14) में किया गया है।

2. **महावृष** – अथर्ववेद में **मूजवन्तों** के साथ इस देश का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ ज्वर को चले आने के लिए आग्रह है। छान्दोग्य उपनिषद (4.2.5) में लिखा है कि राजा जानश्रुति पौत्रायण ने महावृष देश में **ब्रह्मज्ञानी सयुग्वा रैक्व** को **रक्वपर्ण** नामक ग्राम दिया था।

3. **काशि या काश्य** – अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा के अनुसार (5.22.14), शतपथ ब्राह्मण (13.5.4.19), बृहदारण्यक (2.1.1) में उल्लिखित काशी वर्तमान **काशी** ही है। ब्राह्मण युग में भी इसकी प्रख्याति कम न थी। **काशि** काशी के निवासियों के लिए तथा **काश्य** यहाँ के राजा के लिए प्रयुक्त होता था। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि काशी नरेश **धृतराष्ट्र को शतानीक सात्राजीत ने युद्ध** में हराया था। बृहदारण्यक (3.8.2) में **अजातशत्रु** काशी के राजा बताये गये हैं।

4. **कोसल** – इस देश का नाम शतपथ ब्राह्मण (1.4.1.16) तथा जैमिनीय ब्राह्मण में प्राप्त होता है। कोसलों का नाम विदेहों के साथ प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि पीछे के समय के अनुसार वैदिक काल में भी यह आस-पास निवास करते थे।

5. **विदेह** – शतपथ ब्राह्मण (1.4.10) में **विदेह** नाम से भी इसी देश का निर्देश किया गया है। यह वही देश है जो आजकल बिहार में **तिरहुत** के नाम से विख्यात है। कोसल तथा विदेह की सीमा पर **सदानीरा** थी, जो सम्भवतः आजकल की **गण्डकी** नदी है।

6. **मगध** – अथर्ववेद (5.22.14) में अंग के साथ मगध में **ज्वर के चले जाने** की प्रार्थना प्राप्त होती हैं। यजुर्वेद (30.22) के **पुरुषमेध** के अवसर पर **मगध की बलि अतिकुष्ट** के लिये बतायी गयी है। वैदिक काल में मगध के निवासी सभ्यता तथा धर्म की दृष्टि से नितान्त हीन समझे जाते थे।

7. **अंग** – अथर्ववेद (5.22.14) में **मगध के साथ** इस देश का नामोल्लेख प्राप्त होता है। **भागलपुर** के आस-पास का प्रदेश आधुनिक काल में **अंग** देश का ज्ञापक है।

8. **अन्य** – चेदि (बुन्देलखण्ड) नैषध, विदर्भ, मत्स्य, आन्ध्र मद्रास के उत्तर में पुण्ड्र बिहार के दक्षिण भाग, काम्पिल, कुरुक्षेत्र, तूर्ध्न, त्रिप्लक्ष आदि देशों के सन्दर्भ भी इतस्ततः वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं।

5.3 वैदिककालीन सामाजिक जीवन

वेद काल में पिता **समाज में प्रधान** होता था। वह अपनी उभयविध सन्तति का ध्यान रखता था। बालकों को शिक्षित करने के साथ ही बालिकाओं को ललित कला की शिक्षा देकर सुयोग्य गृहिणी बनाता था। उपनयन के अनन्तर वेदाध्ययन की प्रथा थी। संतत्यर्थ प्रत्येक मनुष्य देवाराधना करता था। पुरुष सूक्त के 10वें मन्त्र में **चारों वर्णों की उत्पत्ति** का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन सरल याग स्थायी अनुष्ठानों का रूप लेने लगे परिणामतः ब्राह्मणों का स्वतन्त्र वर्ण ही पृथक् हो गया। **सामरिक आवश्यकता** के कारण **क्षत्रिय वंशानुगत** हो गये। **कृषि प्रधान वैश्य** भी शनैः-शनैः वंशानुगत हो गये।

5.3.1 विवाह परम्परा

वैदिक आर्य संग्राम प्रिय थे अतः सर्वदा शौर्य प्राकट्य हेतु उद्यत रहते थे। अतएव वीर पुत्रों की कामना करते थे–**यथाऽहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा** (अथर्ववेद 1.29. 5)। **अभ्रातृका कन्या से विवाह न्यूनातिन्यून होता था** (ऋग्वेद 3.31.1)। स्वयंवर की व्यवस्था प्रायशः क्षत्रिय कन्याओं के क्रम में व्याप्त थी। शतपथ ब्राह्मण (4.1.5.9) में कन्या द्वारा **यावज्जीव पातिव्रत्य** प्रण का वर्णन है। माता-पिता की इच्छा से ही कन्या का विवाह होता था, यथा–**श्यावाश्व के समक्ष रथवीति ने ऋषि होने पर ही कन्यादान की स्वीकृति दी**, का वर्णन है (बृहद्देवता 5.50-80)। ऋग्वेद (10.85) में तत्समय के विवाह की भावना का वर्णन है –

> **सोमो वधूयुरभवदश्विना ता उभा वरा।**
> **सूर्यां यत् पत्ये शंसन्ती मनसा सविता ददात्।।**

सामान्यतः एक विवाह की प्रथा थी परन्तु बहुविवाह भी होता था (**ऋग्वेद** 1.71.1)। राजा की चार प्रकार की पत्नियाँ होती थीं–**महिषी** (यह क्षत्रिया एवं पटरानी होती थी, शतपथ ब्राह्मण 6.5.3.1), **परिवृक्ता** (पुत्रहीन पत्नी, अथर्ववेद 7.113.2), **वावाता** (राजा की प्रियतमा, ऐतेरेय ब्राह्मण 12.11), **पालागली** (राजदरबार के पदाधिकारी की कन्या,

शतपथ ब्राह्मण 13.4.1.8)। ब्राह्मणों में भी **बहुविवाह** का प्रचलन था, यथा **च्यवन, सौभरि एवं याज्ञवल्क्य** का प्रसंग दृष्टिगोचर होता है।

5.3.2 नारी

वैदिक युग में नारी **दुहिता**, **पत्नी** एवं **माता** के रूप में सम्मानित थी। समस्त धार्मिक कृत्य **नारी के संग** से ही सम्पादित होते थे। **अपत्नीक** को यज्ञाधिकार **अप्राप्त** था **(तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.2.2.6)**। नारी का अपने पति के ऊपर पूर्ण प्रभुत्व भी था। इन्हें विविध प्रकार की कलाओं से सुशिक्षित किया जाता था। **नारियों** के द्वारा मन्त्र दर्शन का उल्लेख भी हमें ऋग्वेद के अनुशीलन से प्राप्त होता है, यथा–**लोपामुद्रा, अपाला (ऋग्वेद 10.91), घोषा, रोमशा, सूर्या ऋषिकायें**।

उपनिषद् काल में नारी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। समाज में उच्च स्तर की कन्याओं में उपनयन का प्रचलन था –**पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते।** तदनन्तर सुव्यवस्थित शिक्षण कराया जाता था। महिला छात्राओं में दो प्रकार प्रचलित थे –

क) **सद्योद्वाहा** – इस प्रकार की स्त्रियाँ **ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थाश्रम** में जाकर मातृत्व को प्राप्त करती थीं।

ख) **ब्रह्मवादिनी** – **ब्रह्मचिन्तन** में अपना तपोनिष्ठ जीवन व्यतीत करती थीं, यथा बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्ण्य याज्ञवल्क्य की स्त्रियाँ।

5.3.3 समाज

वैदिक आर्यों का अधिकांश जीवन **ग्राम्य** था किन्तु **नागर** जीवन के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। रथ्या (सड़कों) के द्वारा एक स्थान दूसरे से स्थानों जुड़े थे। समाज में **कृषिकर्म** एवं **पशुपालन** अधिक था। प्रतिदिन प्रातःकाल गायों को **गोशाला (गोष्ठ)** से चरागाह **गोपाल** के संरक्षण में भेजा जाता था। गायों के दोहन का कार्य **गृहपति की पुत्री** करती थी। अतएव **दुहिता** पद का प्रयोग तदर्थ दृष्टिगोचर होता है।

5.3.4 आवास

वैदिक युग में आर्य **ग्राम्य, नागर** आदि जीवन व्यतीत करते थे। क्रमशः अधोलिखित के बारे में जानते हैं –

1. **दुर्ग** – वैदिक काल में **पुर** शब्द से **किला का ग्रहण** किया जाता है। जिसका प्रयोग अपने निवास-स्थान को **शत्रुओं से रक्षण** हेतु किया जाता था। ये बहुत विशाल हुआ करते थे। किले **पत्थर** के बनाये जाते थे (ऋग्वेद 4.30.20)। **लोहे** के बने किलों को **इन्द्र** द्वारा ध्वस्त किये जाने का उल्लेख ऋग्वेद (2.20.8) में प्राप्त होता है। सौ दीवाल **(शतभुज)** युक्त किलों का भी निर्देश ऋग्वेद (1.166. 8) में प्राप्त होता है।

2. **पुर** – वैदिक साहित्य में त्रिपुर तथा पुर उभयविध शब्द प्राप्त होते हैं परन्तु अर्थ का पार्थक्य प्रतीत होता है, यथा –**त्रिपुर** से तात्पर्य ऐसे नगर से जहाँ किलाबन्दी की तीन पंक्तियाँ बनायी गयी हों। इस युग में आर्य **काम्पिल, आसन्दीवन्त** तथा **कौशाम्बी** नगरियों से अवगत हो गये थे। बड़े नगरों में 4, 8, 12 अथवा चार के द्वारा विभाज्य संख्या वाले मुख्य द्वार होते थे जो एक दूसरे से सड़कों द्वारा मिले

रहते थे। इन चारों नगरद्वारों के एकत्र मिलने का स्थान चतुष्पथ **चौक** कहलाता था। राजा अपने राजकर्म सहायक वीरों एवं पत्नियों के लिए उपयुक्त बड़े-बड़े मकानों को बनाकर सुसज्जित किया करते थे। राजा के लिए अपना विशिष्ट महल होता था जो अनेक खम्भों से युक्त हुआ करता था। राजा **वरुण** का महल **सहस्रस्थूण** से परिपूर्ण था। साथ ही **सहस्र द्वार** भी उसमें थे। इस प्रकार के विशाल महलों के निमित्त **हर्म्य** पद का प्रयोग होता था। **हर्म्य** की अट्टालिका से राजा प्रजा को दर्शन देता था (ऋग्वेद 7.56.16)।

3. **वैदिक ग्राम** – यह आवश्यक समस्त सामग्रियों से परिपूर्ण होता था। ग्राम्यवासी स्वावलम्बी होते थे। ग्रामों में **पशुपालन** किया जाता था। **रुई** भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती थी। स्त्रियाँ **सूत से वस्त्र** बुनकर अपनी सन्तति को पहनाती थीं। **कुम्हार, लोहार** प्रभृति सभी लोग दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे। प्रत्येक ग्राम में **हजाम/वप्ता** (ऋग्वेद 10.42.4) होता था। **वैद्य** लोग रुग्ण की खोज किया करते थे। **संगीत** का भी प्रचार-प्रसार था।

4. **गृह** – वैदिक साहित्य में **आयतन** (चारों ओर दीवाल), **पस्त्या, वास्तु, हर्म्य, दुरोण** (द्वार युक्त) आदि पदों के प्रयोग गृह के अर्थ में ही प्राप्त होते हैं। निर्माण के आधार पर पृथक्-पृथक् संज्ञा प्राप्त होती थी। घरों में **आर्यों के कुटुम्ब तथा पालतू पशु** भी रहा करते थे। घर में बहुत से कक्ष होते थे। गृह निमाणार्थ बाँस, मिट्टी, लकड़ी पत्थर और पके हुए ईंट का प्रयोग होता था। अथर्ववेद (3.12, 9. 3) में गृहनिर्माण प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है। सामान्यतया **बाँस एवं तृण** के प्रयोग से घर बनाया जाता था। लकड़ी के मकानों में खम्भों का प्रयोग बहुलतया होता था। घरों में **अग्निशाला, पत्नी सदन, हविर्धान, सदस्, अतिथिशाला** भी होते थे (अथर्ववेद 9.6.5)। घरों में तीन आँगन हुआ करते थे। गृहरक्षणार्थ **वास्तोष्पति** देवता से प्रार्थना का उल्लेख (ऋग्वेद 7.54) प्राप्त होता है। घर मापनार्थ सूत्र का प्रयोग होता था। बृहन्त एवं शाला शब्द का प्रयोग घर के आकार के आधार पर होता था। घरों में शिक्यों के छत पर लटकने का उल्लेख प्राप्त होता है। कोठे के अन्दर कोठरी का प्रयोग होता था। घर को दृढ करने के लिये नींव परिपक्व रखी जाती थी। घर को पर्याप्त अलंकृत किया जाता था।

5.3.5 गृह सामग्री

वैदिक युग में बैठने तथा लेटने के अनेक आसनों का वर्णन प्राप्त होता है, जो सामाजिक उन्नति के साथ-साथ सीधे-सादे से अलंकृत और परिष्कृत होते गये। यज्ञ के अवसर पर कुश निर्मित **प्रस्तर, बर्हि** तथा **कूर्च** का प्रयोग किया जाता था। **अश्वमेध** के अवसर पर **हिरण्यकशिपु** (सोने की चटाई) पर बैठने की परम्परा थी।

वैदिक काल में **तल्प** (वैवाहिक शय्या), **प्रोष्ठ** (हर्म्य में रखा जाने वाला) तथा **वह्य** (वहन करने योग्य) पर लेटकर आराम करने वाली स्त्रियों का उल्लेख किया गया है (अथर्ववेद 14.2.31)। **आसन्दी** का उल्लेख (वाजसनेयी संहिता 8.56) में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका विशेषतया वर्णन है। **पर्यङ्क** इसका विस्तृत रूप प्रतीत होता है। शतपथ ब्राह्मण (5.4.4.1) में **राज्याभिषेक** के अवसर पर **आसन्दी के अंग प्रत्यङ्ग का** विशेष वर्णन प्राप्त होता है।

विविध प्रकार की वस्तुओं को रखने हेतु **कलश, द्रोण, स्थाली, दृषत्, उपल, उलूखल, मुसल, शूर्प, चषक** तथा **दृति** का उल्लेख बहुधा प्राप्त होता है। कलशों में **सोने और चाँदी** के सिक्के रखे जाते थे और उन्हें रक्षार्थ जमीन में गाड़ा जाता था, यथा **हिरण्यस्येव कलशं निखातम्** (ऋग्वेद 1.117.12)। तत्कालीन जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था।

5.3.6 भोजन

वैदिक आर्यों का जीवन अत्यन्त सरल एवं सात्त्विक था। तत्समय **दूध** और **घी** की प्रचुरता थी। भोजन में **जौ की रोटी** तथा **भात** प्रमुख था। **जव** के आटा में दही मिला **करम्भ** तैयार कर **पूषन्** को समर्पण किया जाता था। **क्षीरोदन, दध्योदन, मुद्गोदन, दाल, मूंग** तथा **उड़द** का प्रयोग भोजन में होता था। **गोधूम** का प्रयोग भी कुत्रचित् स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। **सक्तु** का दूध के साथ प्रयोग होता था। सोमरस दूध में मिलाकर प्रयोग किया जाता था। दधिमिश्रित सोमरस **दध्याशीर** कहलाता था। घी का बहुतायत में प्रयोग होता था। **नवनीत, आयुत, विलीन, आज्य, घृत** इत्यादि विशेषण घी की विविध स्थितियों के परिचायक थे। देवता के निमित्त घृत की आहुति **अग्नि** में समर्पित की जाती थी।

माँस भी शीत प्रदेशों में भोज्य होता था। हिमाच्छादित प्रदेशों में विषम ऋतु से रक्षणार्थ भोजन में यह प्रयोग किया जाता था (ऋग्वेद 1.64.10)। **फलों** का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। जंगलों में स्वादिष्ट फलों के उगने का वर्णन प्राप्त होता है। ओषधियाँ स्वतः भी उग जाती थीं तथा कुछ को उगाया जाता था। आर्यों को **बेर** अत्यधिक प्रिय था। **बदर, कर्कन्धु** तथा **कुवल** इसी के अपर नाम हैं (वाजसनेयी संहिता 14.22)। **पिप्पल** के फल भक्षण का भी उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद 16.164. 20)। **मधु** का प्रयोग देवार्पण एवं भोजन को मधुर बनाने हेतु किया जाता था। **इक्षु रस** का प्रयोग भी पर्याप्त होता था (ऋग्वेद 9.8.6.18)। **लवण** का सन्दर्भ अथर्ववेद (7.76.1) में भी प्राप्त होता है।

पेय पदार्थों में सोमरस प्रमुख था जो विभिन्न अवसरों पर पत्थरों द्वारा कूटा जाकर, छानकर देवार्पण के अनन्तर दूध अथवा अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर ग्रहण किया जाता था। सोमपान से देवता प्रसन्न होते थे (ऋग्वेद 10.119)। सोमपान से **मानसिक उल्लास तथा शारीरिक स्फूर्ति** की उत्पत्ति होती थी। अतएव समराङ्ण में जाने से पूर्व आर्य सोमपान किया करते थे (ऋग्वेद 9.106.2)। सुरापान **मादकता उत्पन्न** करने के कारण **गर्हणीय** था। अतएव इसकी गणना **अनिष्टोत्पादक** वस्तु के रूप में की गई है (ऋग्वेद 7.86.6)।

5.3.7 वस्त्र एवं परिधान

वैदिक आर्यों के वस्त्र एवं परिधान **ऊनी, सूती, रेशमी** एवं **अजिन** एवं **कुश** निर्मित वस्त्र थे। अजिन **बकरों** एवं **हरिण** चर्म का होता था। ऐतरेय ब्राह्मण (1.1.3) के आधार पर दीक्षा में ग्रहणकर्ता को **कृष्णाजिन** धारण करने का नियम था। **सोमयाग** के अवसर पर यजमान-पत्नी को अधोवस्त्र के ऊपर कुश के बने वस्त्र पहनने का वर्णन प्राप्त होता है (शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.8)। शीत अथवा हिमाच्छादित प्रदेशों में **ऊर्ण वस्त्र** पहनने का प्रचलन था (ऋग्वेद 5.52.9)। **गान्धार** का ऊर्ण सर्वत्र प्रसिद्ध था। **रेशमी** वस्त्रों का व्यवहार **यागानुष्ठान** के समय पर विशेषतः होता था। **केसरिया रंग** का रेशमी परिधान नितान्त पवित्र माना जाता था। प्रतिदिन के व्यवहार में सफेद सूती

धुले हुए वस्त्र पहने जाते थे (अथर्ववेद 18.4.31)। युवतियाँ रंगीन साड़ियाँ पहना करती थीं। **उषा** के वस्त्र निरीक्षण करने से यह अच्छे से पुष्ट होता है (ऋग्वेद 1.92.4)।

सामान्यतया दो प्रकार के वस्त्र प्रचलन में थे–**अधोवस्त्र** (धोती, साड़ी) एवं **अधिवास** (चादर दुपट्टा)। **नीविं करोति** वचन से धोती को बाँधने की परम्परा ज्ञात होती है। **कुर्ता** (प्रतिधि, द्रापि, अत्क) का भी प्रचलन था। नववधू के वस्त्रों में **प्रतिधि** सम्भवतः **चोली/कंचुकी** ही ज्ञात होती है (अथर्ववेद 14.1.8)। वरुण के द्वारा **हिरण्मय द्रापि** पहनने का उल्लेख प्राप्त होता है –**बिभद्र द्रापिं हिरण्ययं वरुणा** (ऋग्वेद 1.25.13)।

क) **पेशस्** – यह तत्कालीन मूल्यवान् वस्त्र था। इस पर सुनहले जरी का कार्य होता था। दम्पती सुनहले पेशस् को धारण करते थे (ऋग्वेद 8.31.8)। अश्विन् के **सफेद एवं काले पेशस्** धारण करने के उल्लेख प्राप्त होते है–**पेशो न शुक्रमसितं वसाते** (वाजसनेय संहिता 19.89)।

ख) **पगड़ी** – अवसरों के आधार पर वैदिक कालीन आर्य पृथक्-पृथक् प्रकार की **पगड़ी (उष्णीष)** धारण करते थे। यह **धर्मरक्षणार्थ** प्रयोग की जाती थी। कात्यायन श्रौतसूत्र (15.5.13,14) में **उष्णीष** को सिर पर लपेट कर दोनों ओर खोंस दिये जाते थे अथवा नाभि के पास ही खोंसे जाते थे।

ग) **जूता** – वैदिक काल में **शीत-घर्म** एवं **युद्ध में** रक्षणार्थ **पादत्राण** पहनने का उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद 1.133.2)। **पत्सङ्गिणी** का उल्लेख शत्रु पर आक्रमण करने के अवसर पर धारणार्थ प्राप्त होता है (अथर्ववेद 5.21.10)। जूता **मृग** अथवा **शूकर के चर्म** से बनाया जाता था। **उपानह्** (जूता) शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण (5.4.3.19) में प्राप्त होता है।

5.3.8 भूषण-सज्जा

ऋग्वेद (2.33.10) के सन्दर्भ तत्कालीन समाज में आभरण धारण की पुष्टि करते हैं। **निष्क** सुवर्ण से निर्मित था तथा **मुद्रा** के रूप में भी प्रचलित था। **रुक्म** का भी प्रयोग व्यवहार में था जो गले में लटकाकर पहना जाता था – **रुक्मवक्षसः** (ऋग्वेद 2.34.2)। इसके अतिरिक्त **कर्णशोभन, मुक्ताभूषण, मणिग्रीव** (मणि निर्मित आभरण) प्रभृति आभूषणों का प्रयोग होता था। पुरुष केश **जटाजूट (कपर्द)** बाँधते थे– **दक्षिणतस्कपर्दाः** (ऋग्वेद 7.32.1)। यजुर्वेद (11.50) **सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वोपशा** से स्त्रियों के भी **कपर्द** युक्त होने की सूचना प्राप्त होती है।

1. **ओपश्** – स्त्री पुरुष दोनों इसे धारण करते थे। ऋग्वेद (1.173.6) में इसकी तुलना आकाश से की गई है। जब केशों को **गोलाकार लपेट ऊपर एक गाँठ बाँध** दी जाती है, तब इसे **ओपश्** कहते थे।
2. **कुरीर** – यह एक शिरोभूषण था ऐसा विविध सन्दर्भों से ज्ञात होता है (वाजसनेयी संहिता 11.50)। सम्भवतः इसे **विवाह के अवसर** पर धारण करने की परम्परा थी। बहुत से विद्वान् **शृंगाकृति केश रचना** को भी कुरीर स्वीकार करते हैं।
3. **कुम्ब** – इसका सम्बन्ध स्त्रियों से था। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में पत्नी के सिर पर इनकी रचना का विधान प्राप्त होता है।

5.3.9 आवागमन के साधन

वैदिक काल का प्रधान साधन रथ था। उत्सवों में **रथ दौड़** हुआ करती थी। रथ लकड़ी का बनता था। इसमें दो अथवा चार घोड़े जोते जाते थे। रथों का वर्गीकरण वैशिष्ट्य के आधार पर होता था। **वाहकों** के आधार पर वृषरथ, षडश्व, पंचवाही आदि, **रथांगों के आधार पर** त्रिबन्धुर, अष्टाबन्धुर, सप्त-चक्र, हिरण्यचक्र, हिरण्य प्रउग आदि नाम होते थे।

अनस् का प्रयोग भी किया जाता था। इसमें **बैल** का प्रयोग किया जाता था। यह ऊपर से आच्छादित रहती थी। **धूर्षद** गाड़ी खींचने वाले पशु को कहते थे। यह मुख्यतया दो प्रकार की थी–**मनुष्यवाही एवं भारवाही** (अनाज ढोने वाली शकट)। छोटी गाड़ी **गोलिंग** अथवा **लघुमान** कहलाती थी। जलयान का भी तत्समय प्रयोग होता था। पतवार को **अरित्र** तथा नाविक को **अरितृ** कहा जाता था।

5.4 वैदिककालीन आर्थिक जीवन

वैदिक काल में आर्यों की आर्थिक दशा अत्यन्त समुन्नत थी। उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं था। जीवन के लिए उपयोगी **प्रत्येक वस्तु का उत्पादन वे स्वयं** करते थे। प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने तथा अर्थोपार्जन की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। भौतिक जीवन का सुख आर्थिक समुन्नति पर ही निर्भर करता है, इसलिए आर्य सदा यही प्रार्थना करते थे कि वह हर प्रकार के धन के स्वामी बनें, उनका जीवन कभी भी अभावग्रस्त न हो। अन्न, जन, पशु, हिरण्य आदि उनकी प्रमुख सम्पत्ति थी। अर्थसाधनार्थ सम्पादित किये जाने वाले कार्य/उद्योग अधोलिखित हैं –

5.4.1 कृषि

आर्य कृषि प्रधान जाति थी। **अन्नं बहु कुर्वीत** यह आर्यों के आर्थिक जीवन का सूत्र वाक्य था। वे निपुण कृषक थे। ऋग्वेद में कृषि कर्म में सहायक तथा कृषि से सम्बन्धित उपकरणों का भूरिशः उल्लेख प्राप्त है। हल के लिए **सीर** तथा **लाङ्गल** (ऋग्वेद 4.57.8, 4.57.4) शब्द का प्रयोग होता है। बैलों की गर्दन के साथ जुआ को बाँधने वाली रस्सी **वरत्रा** कहलाती थी। कूप से जल निकालने के लिए घड़े में बाँधी जाने वाली रस्सी के लिए भी **वरत्रा** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है (ऋग्वेद 10.106.5), बैलों को हाँकने वाली चाबुक **अष्ट्रा** थी (ऋग्वेद 4.57.4, 10.102.8), हल के नीचे लगी लोहे की पत्ती का नाम **फाल** था जिससे भूमि जोती जाती थी (ऋग्वेद 4.57.8, 10. 117.7)। फाल से खेत में जो रेखा बनती थी उसका नाम **सीता** था (ऋग्वेद 4.57. 6,7)। हल जोतने वाले के लिए **कीनाश** शब्द का प्रयोग किया गया है (ऋग्वेद 4.57. 8, अथर्ववेद 4.11.10, 6.30.1) जो सम्भवतः **किसान** शब्द का पूर्वरूप है। ऋग्वेद के एक स्वतन्त्र सूक्त (4.57) में सम्पूर्ण कृषिकर्म का उल्लेख है। प्रारम्भ के तीन मन्त्रों में क्षेत्र के स्वामी देवता **क्षेत्रपति** से कृषि के लिए अनुकूल होने, पर्याप्त वर्षा करने तथा सभी प्रकार के अरिष्टों से रक्षा करने के लिए प्रार्थना की गई है। शेष **पाँच मन्त्रों में** कृषि विषयक प्रत्येक कार्य की सफलता की प्रार्थना है–

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः। तेनेमामुप सिञ्चतम्।।

ऋग्वेद 4.57.4-5

एक मन्त्र में निर्देश है कि **कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः** (ऋग्वेद 10.34. 13) अर्थात् कृषि ही करो और उससे प्राप्त वित्त को ही पर्याप्त समझते हुये उसमें प्रसन्न रहो।

कृषिभूमि के लिये **क्षेत्र** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि सबके खेत अलग-अलग होते थे (ऋग्वेद 10.33.6)। इन खेतों का माप होता था (ऋग्वेद 1. 110.5)। खेत पर व्यक्ति का पूर्ण अधिकार होता था (ऋग्वेद 8.91.5)। भूमि दो प्रकार की थी **उर्वरा** तथा **आर्तना** (ऋ.वे.1.127.6)। जो भूमि उपजाऊ होती थी वह **उर्वरा** अथवा **अप्नस्वती** कहलाती थी तथा जो भूमि बोने के योग्य नहीं होती थी उसे **आर्तना** कहते थे। जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये उसमें खाद **(करीष)** डाला जाता था (अथर्ववेद 3.14.3)। उर्वरा भूमि के चारों तरफ घास वाली भूमि होती थी, जो सबकी साझी होती थी। उसमें सबके पशु चरते थे। वह जमीन **खिल** अथवा **खिल्या** कहलाती थी।

कृषि को हानि न होने पाये इसके लिये लोग हमेशा सचेत रहते थे। पक्षी, कीड़े आदि फसल को नष्ट कर देते थे। ऋग्वेद (10.68.1) में पक्षियों से फसल की रक्षा करने वाले कृषकों के शब्द करने का उल्लेख है। **टिड्डी** कृषि के बड़े शत्रु थे। छान्दोग्य उपनिषद् (1.10.1) में उनके लिये **मटची** शब्द का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद (6.50) सम्पूर्ण सूक्त **कृषि की कीटों से रक्षा के लिये** किये जाने वाले **अभिचार** का उल्लेख करता है। **अतिवृष्टि** तथा **अनावृष्टि** दोनों से फसल की रक्षा के लिये देवताओं से प्रार्थना की जाती थी।

फसल के पकने पर उसे **दात्र (हंसिया)** से काटते थे (ऋग्वेद 8.78.1)। उसी के प्रकार का एक **सृणी (अङ्कुश)** होता था, जिससे फसल काटने के अतिरिक्त वृक्ष का पका फल भी तोड़ा जाता था (ऋग्वेद 1.58.4, शतपथ ब्राह्मण 7.2.2.5)। फसल को काट कर उसे **पुल्लियों** में बाँधते थे जिसे **पर्ष** कहते थे। इनको खलिहान में लाया जाता था जिसे **खल** कहते थे। ऋग्वेद (10.101.3) के अधोलिखित मन्त्र में सम्पूर्ण **कृषिकर्म** का उल्लेख प्राप्त होता है –

युनक्तु सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सण्यः पक्वमेयात्।।

गहाई के अनन्तर **शूर्प** से **अन्न** और **भूसे** को अलग किया जाता था। इस कार्य के सम्पादक को **धान्यकृत्** कहा जाता था (ऋग्वेद 10.84.13)। अन्न को **उर्दर** नामक पात्र से नाप कर **कोठियों में** रखते थे। जिस भण्डार में अनाज रखा जाता था उसे **स्थिवि** कहा जाता था (ऋग्वेद 10.63.3)।

5.4.2 पशुपालन

कृषि प्रधान समाज में कार्य पशुओं के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकता है। पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10.90.8) में **तीन प्रकार** के पशुओं का उल्लेख प्राप्त होता है– **वायव्य, आरण्य** तथा **ग्राम्य**। ऋग्वेद (10.90.10) के अनुसार पशुओं की दो श्रेणियाँ हैं– **उभयदन्त** एवं **अन्यतोदन्त**। पशुओं के अन्य प्रकार के विभाग यथा– **एकशफ, क्षुद्र, हस्तादान, मुखादान** इत्यादि के भी उल्लेख वैदिक साहित्य में इतस्ततः प्राप्त होते हैं।

1. **गाय** – शतपथ ब्राह्मण (3.3.3.2) में स्पष्ट उल्लेख है कि गाय से दूध, दधि, मस्तु, आतंचन, नवनीत, घृत आमिक्षा तथा वाजिन् प्राप्त होता है –**गोर्वै प्रति धुक् तस्यै शृतं तस्यै शरः तस्यै मस्तु तस्या आतंचनं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनम्।** अग्निहोत्र सम्बन्धित द्रव्यों की प्राप्ति का मुख्य साधन होने से यह **अग्निहोत्री** भी कहलाती थी। दक्षिणा के क्रम में इनका प्रचुर प्रयोग था। यह बहुमूल्यवती होती थी अतः इनके विनिमय से सोमक्रयण किया जाता था। ऋग्वेद (6.28.1-8) में गाय की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। गाय के लिये विविध **स्वरूप के कारण**– ककी, शुक्रा, पृश्नी, कृष्णा एवं रोहिणी, **सन्तति, प्रसव एवं दूध देने की स्थिति के आधार पर**– प्रत्ता, गृष्टि, धेना, धेनु, धेनुका, धेनुष्टरी, सूतवशा, वेहत्, निवान्यवत्सा, निवान्या, अभिवान्यवत्सा, अभिवान्या, वान्या, स्तरी एवं वशा तथा **अवस्था के आधार पर**– त्र्यवी, दित्यौही, पंचावी, त्रिवत्सा, तुर्यौही एवं प्रष्ठौही, **चिह्नांकन के आधार पर**– अष्टकर्णी, कर्करिकर्णी, दात्रकर्णी, स्थूणाकर्णी, छिद्रकर्णी एवं विष्टकर्णी प्रभृति विशेषण पद प्रयुक्त होते थे। गाय का दोहन प्रायशः तीन बार किया जाता था– प्रातर्दोह, संगव, सायंदोह। **गोपालों** का कार्य गायों को हाँकना तथा **सर्वविध रक्षण** करना था (ऋग्वेद 1.120.6)। इस क्रम में **पूषन्** की आराधना भी आर्य **गाय के रक्षणार्थ** किया करते थे।

2. **अजा** – वाजसनेयी संहिता (30.11) में बकरी पालने वाले के लिए **अजपाल** संज्ञा का प्रयोग प्राप्त होता है। गाय के अतिरिक्त दुग्ध देने वाले पशुओं में **अजा** प्रमुख थी। इसके **दुग्ध से भी होम** का विधान तैतिरीय संहिता (5.1.7) में प्राप्त होता है। **प्रवर्ग्य** में **गो-क्षीर** के अतिरिक्त **अजा-क्षीर** का भी आहुतियों में प्रयोग किया जाता था।

3. **अनड्वान्** – कृषि कर्म हेतु **बैल** प्रमुख पशु था। बैल के लिये **वृषभ, उक्षन्, ऋषभ, गौ, वाह, अनडुह्** आदि कई शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। **अनस्** गाड़ी खींचने के कारण **अनडुह्** कहा जाता था। वैदिक काल में सभी कृषक बैल का प्रयोग करते थे। हल में जोते जाने वाले तथा **गाड़ी खींचने वाले वधिया (वध्रि)** होते थे (ऋग्वेद 1.32.7)। जो वधिया नहीं होते थे उन्हें गायों के साथ रखा जाता था।

4. **अश्व** – यह युद्ध का प्रमुख पशु था। ये बहुत मूल्यवान् होते थे। विशिष्ट अवसरों पर इनका आभूषणों द्वारा श्रृंगार किया जाता था (ऋग्वेद 10.78.11)। यह विविध रंगों के होते थे, यथा–**हरित, हरी, अरुण, पिशंग, रोहित, श्यावा, श्वेत** आदि। **कृष्णकर्णीय श्वेताश्व को बहुमूल्य** माना जाता था (ऋग्वेद 5.17.15)। **अत्य, अर्वन्, वाजिन्, सप्ति, हय** आदि अनेक शब्दों का प्रयोग अश्व के क्रम में प्राप्त होता है। **सिन्धु प्रदेश** के अश्व बहुत **प्रसिद्ध** माने जाते थे इनके लिये **सैन्धव** विशेषण का प्रयोग प्राप्त होता है (शतपथ ब्राह्मण 11.5.5.12)। इनका प्रयोग सवारी के अतिरिक्त रथ में जोतने के लिये भी किया जाता था। **षड्वीश, रश्मि, प्रग्रह, अश्वाभिधानी, अश्वाजनि, कशा** आदि अश्व पालन के निमित्त प्रयुक्त सहायक वस्तुओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। घोड़ियों की **गति घोड़ों से अधिक** होती थी।

अन्य भारवाहक पशुओं में **ऊँट, गर्दभ, खच्चर** प्रभृति प्रमुख थे (तैत्तिरीय संहिता 5.1.5.5)। **कुत्ते** का प्रयोग रखवाली एवं हल्का भार वाहन हेतु किया जाता था। **भेड़ों** को भी पाला जाता था। **महिषी तथा हाथी** का भी प्रयोग तत्समय किया जाता था।

5.4.3 उद्योग

कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त एतत् सम्बद्ध अन्य कार्य लोग करते थे। जिनका वर्णन अधोलिखित है –

1. **काष्ठ** – यह मुख्य रूप से **तक्षा / बढ़ई** के अधीन था। समस्त कृषि उपकरणों का निर्माण यही किया करता था। **हल, गाड़ी, गृहोपयोगी सामग्री, सूक्ष्म नक्काशी वाली वस्तुओं** आदि का निर्माण **तक्षा** ही करता था (काठक संहिता 12.10)। ऋषियों ने **तक्षण कर्म की तुलना मन्त्र निर्माण से की** है (ऋग्वेद 1. 62.13)। वैदिक देवताओं में **त्वष्टा** को तक्षण से सम्बद्ध माना गया है।

   रथ का निर्माण करने वाले **राजा से सम्बद्ध** होते थे तथा इन्हें **रथकार** कहा जाता था (अथर्ववेद 3.5.1)। यजुर्वेद (16.27) के आधार पर रथकार एक **जाति विशेष** का नाम है। इनका प्रमुख औजार **कुलिश** था (ऋग्वेद 3.2.1)।

2. **धातु** – कृषि के उपयोग में आने वाले लोहे से बनने वाले सभी उपकरणों का निर्माण **लोहार / कर्मार** करता था (ऋग्वेद 9.112.2, अथर्ववेद 3.5.6)। इस क्रम में **ध्मातृ** का प्रयोग प्राप्त होता है जिसका अर्थ है **धौंकने वाला** अथवा **धातु गलाने वाला** (ऋग्वेद 5.9.5)। बाणों में पक्षियों के पंख लगाने का काम वही करता था। युद्धोपयोगी उपकरणों यथा **कवच, ढाल** इत्यादि का निर्माण भी वही करता था।

   धातुओं में हिरण्य, रजत आदि से आभूषण ताबीज आदि के निर्माण का उद्योग हिरण्यकार करता था (वाजसनेयी संहिता 30.17)। मणि की शक्ति में आर्यों का अटूट विश्वास था। अतः सर्वबाधाशमन हेतु विविध प्रकार की मणियों को धारण करते थे। इस प्रकार के निर्माण कार्य के प्रसंग में मणिकार संज्ञा भी प्राप्त होती है (तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.4.3.1)। स्वर्ण, रजत तथा मणियों के आभूषणों का निर्माण मणिकार करते थे, जो रत्न परीक्षक होते थे।

3. **वस्त्र** – वैदिक काल में **सूत, रेशम तथा ऊन** तैयार कर वस्त्र निर्माण किया जाता था। सूत को बुनने के क्रम लम्बाई में **तन्तु** चौड़ाई में **ओतु** कहा जाता था। बुनने के औजार को **तसर**, करघे को **वेमन्**, खूँटी को **मयूख**, सूत को खींचनें के लिये भार रूप वस्तु को **सीस** कहते थे (ऐतरेय ब्राह्मण 5.15)। बुनकर को **वाय** कहते थे। कढ़ाई किये गये वस्त्रों को **पेशस्** कहा जाता था। **मलमल** जैसे बारीक वस्त्र भी होते थे। उषस् के वर्णन में भी इस प्रकार के वस्त्रों का संकेत है।

4. **चर्म** – वैदिक काल में चर्म का उद्योग करने वाले **चर्मण्य** कहलाते थे (ऐतरेय ब्राह्मण 5.32)। धनुष की **प्रत्यंचा, अश्वों की लगाम, रथ बाँधने की रस्सी, चाबुक की रस्सी, जूते** प्रभृति वस्तुओं का निर्माण चमड़े से ही होता था। **चर्म से वाद्यों** का भी निर्माण होता था। अथर्ववेद (5.21.7) तथा शतपथ ब्राह्मण (5.2.1. 12) में **मृग एवं अजा** चर्म का बहुत महत्त्व बताया गया है। बैल के चर्म से **अधिषवणचर्म** (सोम को पीसने हेतु आधार) का निर्माण किया जाता था (ऋग्वेद 10.94.9)। ग्राम्य की अपेक्षा वन्य पशुओं के चर्म का अधिक प्रयोग होता था। अतएव **वन्य पशुओं का अधिक शिकार** भी किया जाता था। **अजिनसन्ध** (अजिनवस्त्र तैयार करने वाला) तथा **चर्मम्न** (चर्म को रगड़कर चिकना करने वाला) दो प्रकार के चर्मकारों के भेद थे।

5. **मृत्पात्र** – वैदिक काल में मृत् से **गृह्य एवं यज्ञीय पात्रों** को तैयार करने वालों के लिये **कुलाल** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है (वाजसनेयी संहिता 16.27)। कुम्भकार के लिए **मृत्पच** शब्द का प्रयोग होता था (मैत्रायणीय उपनिषद् 2.6. 3. 3)। ऋग्वेद (10.89.7) में **इन्द्र** द्वारा पर्वतों को **नये कुम्भ की तरह** जोड़ने वाला बताया गया है। कुलाल जिस पर रखकर मिट्टी का बर्तन बनाता था उसे **कौलाल चक्र** कहा जाता था (शतपथ ब्राह्मण 11.8.1.1)।

6. **चटाई** – वैदिक काल में **कट** एवं **कशिपु** शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय संहिता (5.3. 12.2), शतपथ ब्राह्मण (13.2.1.3) एवं अथर्ववेद (6.138.5) में चटाई के निमित्त प्राप्त होता है। यह कार्य प्रायशः स्त्रियाँ करती थीं यतो हि **विदलकारी** पद का प्रयोग बाँस की टोकरी बनाने वाली औरत के निमित्त प्रयुक्त **वाजसनेयी संहिता (30.8)** में प्राप्त होता है। इस क्रम में **वेतस्** पद का भी प्रयोग प्राप्त होता है। वेतस् से भी **टोकरी, चटाई** बनाये जाते थे। शतपथ ब्राह्मण (12.8.3.6) मे **रस्सी से आसन्दी** के बुनने का वर्णन प्राप्त होता है। **हिरण्मय कशिपु** अर्थात् **वेतस्** की चटाई पर होता उपवेशन्, करता था (शतपथ ब्राह्मण 13.4.3.1)। **कण्टकार** एवं **कण्टकारी** पद के प्रयोग उस पुरुष एवं स्त्री के लिये है जो **काँटे से चटाई** निर्माण करते थे। ऋग्वेद (10.85.34) में **कटुक** वस्त्र का उल्लेख है जो सम्भवतः चटाई के समान कोई मोटा वस्त्र हो।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य कई लघु उद्योग थे जो तत्समय प्रचलित थे। साथ ही कार्य के आधार पर लोगों के नाम भी प्रचलित थे – यथा **रथकार, पेशत्कारी** इत्यादि। वाजसनेयी संहिता (30) में लगभग 159 प्रकार के उद्योगों का संकेत प्राप्त होता है।

5.4.4 वाणिज्य एवं यातायात

वैदिक काल में वस्तुओं के **क्रय की इकाई गाय, निष्क (स्वर्ण मुद्रा)** जो क्रीत वस्तु के **शुल्क** के रूप में दिया जाता था (ऋग्वेद 4.24.10, 1.126.1-2, 8.1.5)। वस्तु के मूल्य को **वस्न** तथा एतद्रूप में धन प्राप्त करने की कामना करने वाले को **वस्नयन्** कहा जाता था। उस समय भी क्रय-विक्रय करने की प्रक्रिया थी। वस्तुओं को माप-तौलकर **मोल-भाव** विक्रय किया जाता था (तैत्तिरीय संहिता 2.3.2.1)। अथर्ववेद के मन्त्रों में **औषधियों के क्रयण** का वर्णन प्राप्त होता है। **ऊन** तथा **रेशम** का व्यापार भी तत्समय उन्नत था।

व्यापार करने वाले के लिये **वणिज्** शब्द का प्रयोग किया गया है। इन्द्र को भी वणिज् बताया गया है क्योंकि वह इस हेतु प्रेरित करता है (अथर्ववेद 3.15.1)। व्यापार का **मुख्य प्रयोजन धन प्राप्त** करना था (अथर्ववेद 3.15.5)। व्यापार हेतु सामग्री को एक स्थान से अन्यत्र ले जाते समय विविध भयों **(मार्ग काठिन्य, भक्ष्य, पेय, चोर, हिंसक पशु, मौसम)** की आशंका से निवृत्ति हेतु **इन्द्र से रक्षा प्रार्थना** तथा **अग्नि की उपासना** का उल्लेख प्राप्त होता है।

सामान ढोने के लिये **अनस्** (ऋग्वेद 4.30.10) का प्रयोग किया जाता था, जो सामान्यतः **बैल जोतकर** चलायी जाती थी। **अश्व** का प्रयोग मुख्यतया **युद्ध में** किया जाता था। **नौकाओं** द्वारा समुद्र मार्ग से भी आवागमन का उल्लेख (ऋग्वेद 1.25.7) प्राप्त होता है। यह सन्दर्भ स्पष्ट करते हैं कि **समुद्र या नदी मार्ग** से भी **व्यापार** हेतु आवागमन किया जाता था (ऋग्वेद 1.56.2)।

वैदिक काल में **ऋण लेने की भी परम्परा** थी विशेषतः **द्यूतक्रीडा** के समय पर। **पूर्वजों के द्वारा** लिये गये **ऋण न चुकाये** जाने पर **वंशजों को चुकाने** पड़ते थे अथवा **दासत्व स्वीकार** करना पड़ता था (अथर्ववेद 6.115.2-3)। ऋग्वेद (2.28.9) के मन्त्र में **वरुण से ऋणमोचनार्थ प्रार्थना** का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

पणि तत्समय के प्रसिद्ध **व्यापारी** एवं **ऋण प्रदाता** माने जाते थे। ऋग्वेद (8.66.10) में अत्यधिक ब्याज ग्रहण करने के कारण इनको **वेकनाट** भी कहा जाता था।

5.5 वैदिककालीन राजनीतिक जीवन

वैदिक शासन-व्यवस्था के तीन प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं–**धर्मतान्त्रिक, लोकतान्त्रिक अथवा प्रजातान्त्रिक तथा राजतान्त्रिक**। किसी राजनैतिक संस्था के विकास से पूर्व समाज **प्रकृति-नियम** द्वारा शासित था, जिसको हम स्वशासन अथवा धर्मतान्त्रिक शासन कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति **ऋत** के नियम का पालन करता था। यह एक **आदर्श शासन-व्यवस्था** थी जिसमें किसी तन्त्रात्मक संस्था के बिना ही सभी ऋतधर्म के नियमों के द्वारा शासित थे। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त **अराजक, अराजता, अपरुद्ध आदि शब्द राजाविहीन समाज** की ओर संकेत करते हैं। **धर्मतन्त्रात्मक** शासन का उल्लेख **महाभारत** में प्राप्त होता है–

> **न राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्ड्यो न च दाण्डिकः।**
> **धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।। महाभारत शान्तिपर्व 59.19**

उपर्युक्त से ज्ञात होता है कि उस समय **न तो कोई राज्य** था और न ही **कोई राजा**, न कोई **दण्ड्य** था और न ही **कोई दण्ड देने वाला**, सभी प्रजायें अपना धर्म मानकर परस्पर एक दूसरे की रक्षा करती थीं परन्तु जब लोगों के मन में **क्रोध, अहंकार, लोभ, स्वार्थ, घृणा** और दूसरी कई **आसुरी वृत्तियों** का वास हो गया तो **धर्म का आदर्श शासन** प्रभावित हुआ। परिणामतः बलवान् ने कमजोर को भयभीत करना आरम्भ कर दिया। अब एक ऐसे शक्तिशाली और विवेकी व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कमजोर को केवल सहायता अथवा संरक्षण ही प्रदान न कर सके प्रत्युत शोषक बलशाली को दण्ड भी दे और धर्म के शासन को भी सुनिश्चित कर सके। ऐतरेय-ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख है कि **राजा की अनुपस्थिति में देवता असुरों से पराजित हो गये। जब उन्होंने सोम को अपना राजा बनाया तब समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की**। शतपथ ब्राह्मण में भी एक ऐसी स्थिति का वर्णन है–**जब जल के अभाव में सब ओर सूखा पड़ा और मत्स्य-न्याय की स्थिति आ गई**। यथार्थतः भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इस मत्स्यन्याय की स्थिति नहीं आयी तथापि राजा की आवश्यकता पर बल देने के लिये इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। कौटिल्य ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि **मत्स्यन्याय** की स्थिति से दुःखी होकर लोगों ने **अपनी सुरक्षा के लिये मनु को अपना राजा नियुक्त** किया।

वैदिक साहित्य में प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का उल्लेख प्राप्त होता है। शासन का प्रमुख **राजा** कहलाता था किन्तु **राजसिंहासन** उसे **वंशानुगत अधिकार** से प्राप्त नहीं होता था। **प्रजा** द्वारा उसका **चुनाव** होता था। संहिताओं के बहुधा ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनमें राजा के चुनाव का उल्लेख है। ऋग्वेद (10.173.1-2) का एक ऋषि कहता है–**हे राजन्! हमने आपका राष्ट्राध्यक्ष के रूप में वरण किया है**

इसलिये आप हमारे बीच रहिये, आप शक्तिशाली बनिये, आपको सभी प्रजा पसन्द करे, आपके हाथों से राष्ट्र अलग न होवे। इसी प्रकार अथर्ववेद (3.4.2) में भी ऋषि कहता है–हे **राजन्! इस प्रजा ने तुम्हें राजा नियुक्त किया है, पाँच देवियों ने तुम्हें चुना है, राष्ट्र के सर्वोच्च पद को आप अलंकृत कीजिये और वहीं से अपनी प्रजा में धन का वितरण कीजिये।** यह उल्लेखनीय है कि वेदकालीन **प्रजातान्त्रिक शासन** लोगों के **हितों** और **राष्ट्र की सुरक्षा** का विशेष ध्यान रखता था। यदि राजा पद के अनुरूप अपने को शक्तिशाली या योग्य सिद्ध नहीं कर पाता था तो उसे राजपद से हटा कर प्रजा किसी दूसरे व्यक्ति को राजा चुन लेती थी। कभी-कभी उसी राजा को जिसे पद से हटा दिया गया हो **पुनः राजपद पर प्रतिष्ठित किया** जाता था यदि वह किसी प्रकार जनता के विश्वास को प्राप्त कर ले और यह आश्वासन दे कि वह **प्रजा को एक कुशल प्रशासन** प्रदान करेगा। अथर्ववेद (3.3) में एक ऐसे राजा का वर्णन है जो अपने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त करता है। राजा के एकबार चुने जाने पर उसके उस पद पर प्रतिष्ठित रहने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे।

वैदिक साहित्य में ऐसे भी अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जो उस समय की प्रचलित **राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली** की पुष्टि करते हैं। उस समय कई राज्य थे जो अलग-अलग राज्यों से शासित थे। क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य छोटे थे, किन्तु संहिताओं में पाये जाने वाले **सम्राज्, एकराज, अधिराज, राजाधिराज** शब्द राज्य के विस्तृत होने का संकेत देते हैं। एक राजा अपने को अन्य राजाओं से श्रेष्ठ दर्शाने के लिए बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करता था। **अश्वमेध** तथा **राजसूय** यज्ञ इस बात की ओर संकेत करते हैं कि महत्त्वाकांक्षी राजा पड़ोसी राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सदा सक्रिय रहते थे।

जब राजतन्त्रात्मक प्रणाली ने काम करना प्रारम्भ किया उस समय राजा का मुख्य कर्त्तव्य **प्रजा तथा राज्य की शत्रुओं से रक्षा करना** था। राजा **प्रजा का संरक्षक** था अतः उसकी रक्षा करना उसका उत्तरदायित्व था। प्रजारक्षणवत् **ऋत** की रक्षा करना भी उसका प्रमुख कार्य था। अतएव उसे **ऋतस्य गोपाः** कहा जाता था। **ऋत के संरक्षक** के रूप में वह **वरुण** था। राज्याभिषेक के समय उसे **यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र एवं रुद्र** के रूप में सम्बोधित किया जाता था। **यम** के रूप में वह अपराधियों को दण्ड देने वाला, **कुबेर** के रूप में प्रजा में धन बाँटने वाला, **वरुण** के रूप में नैतिक मूल्यों का संरक्षक, **इन्द्र** के रूप में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला तथा **रुद्र** के रूप में पापियों का संहारक था। स्पष्ट है कि वैदिककालीन राजा में देवताओं के ये गुण पाये जाते थे इसीलिये वह **ईश्वर का रूप** माना जाता था। इसे **धर्मपति** की भी उपाधि प्राप्त थी। धर्मपति होने के कारण वह अदण्ड्य था। उसे कोई मनुष्य दण्ड नहीं दे सकता था। यह बात उल्लेखनीय है कि यहाँ धर्मपति शब्द का अर्थ **धर्म का स्वामी** नहीं अपितु **धर्म का पालक** था इसलिये धर्म के नियम से वह ऊपर नहीं था धर्म के नियम बनाने का भी उसे अधिकार नहीं था। यदि वह स्वयं धर्म का उल्लंघन करता था तो वह दण्डित होता था। राज्याभिषेक के समय एक कृत्य सम्पन्न होता था। तत्क्षण **अध्वर्यु** और **उसकी प्रजा** जब उस पर पवित्र जल से अभिषेक करती हुई **अदण्ड्योऽसि** कहती थी उसी समय एक ब्राह्मण **धर्मदण्ड्योऽसि** कहता था। यह प्रथा उस वैदिककाल में **राजतन्त्र के ऊपर धर्मतन्त्र के नियन्त्रण** की द्योतक है।

वैदिक काल में राष्ट्र कई प्रशासनिक इकाईयों में विभक्त था। ये प्रशासनिक इकाईयाँ थीं–**ग्राम, जन, विश एवं राष्ट्र**। विभिन्न गृहों के समुदाय को, जो सुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे के पास-पास बनाये गये होते थे, **ग्राम** कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी और उसका प्रमुख **ग्रामणी** कहलाता था। **ग्रामणी** शब्द इस बात की ओर संकेत करता है कि वैदिक प्रजातान्त्रिक प्रणाली के अन्तर्गत वह ग्राम का नेता होता था और राज्य सरकार की सभाओं में उस ग्राम का प्रतिनिधित्व करता था। उसका कर्त्तव्य ग्रामीणों के दैनिक कार्यक्रम की देखभाल करना था। राजा की ओर से उन्हें सुरक्षा प्रदान करनी पड़ती थी। वह एक समृद्ध व्यक्ति होता था। ऋग्वेद (10.62.11) में मनु को एक **ग्रामणी** कहा गया है और उनके क्रम में **सहस्रदा, हजारों का दान करने वाला** यह अभिधान प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद (10.107.5) में ग्रामणी के उदात्त चरित्र का वर्णन है। वह पुरोहितों को दक्षिणा देने में **ग्राम के सभी लोगों में प्रथम** रहता है।

राज्य की दूसरी बड़ी प्रशासनिक इकाई **जनपद** थी। इसमें एक विशेष समुदाय के लोग होते थे। ऋग्वेद में **जन** शब्द का अर्थ मनुष्य के अतिरिक्त **जनसमूह** भी है। वैदिक साहित्य में अनेक जनों का उल्लेख है। जन का प्रधान **जनराज** कहलाता था (ऋग्वेद 1.53.9)। **जनस्य गोपा** शब्द भी जनों के राजा का वाचक था (ऋग्वेद 3.43.5)।

राज्य की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र थी जिसका शासक राजा होता था। एक राष्ट्र में कई जनपद होते थे। अनेक जनपदों से मिलकर राष्ट्र बनता था। राष्ट्र के सभी लोगों को **विश्** कहा जाता था। ऋग्वेद (10.11.4) में **आर्यविश्** और **दासी विश्** (3.34.9) का उल्लेख प्राप्त होता है जो सम्भवतः एक ही राष्ट्र में रहने वाले **आर्य** और **दास जनों** की ओर संकेत है। राजा को **विश्-पति** या **विशां पति** कहा जाता था। ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, जिनमें राजा और विशों के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख है। राजा का चुनाव **विश्** करते थे और वह तब तक शासन करता था जब तक वे चाहते थे। राजा हमेशा **विशों के समर्थन को जीतने का** प्रयत्न करता था। दोनों के परस्पर सम्बन्ध को मधुर बनाने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य किये जाते थे। तैत्तिरीय संहिता (1.6.10.9) में यह कहा गया है कि **सामन्** के द्वारा किये गये यज्ञ का फल **राष्ट्र** को प्राप्त होता है और **ऋक्** के द्वारा किये गये यज्ञ का फल **विश्** को। तैत्तिरीय संहिता (3.5.7.5) में **राष्ट्र** को एक**पर्ण** तथा **विश्** को **अश्वत्थ** वृक्ष कहा गया है। जब **जुहू पात्र पर्ण का** तथा **उपभृत् अश्वत्थ** का बना हो तो इसका अभिप्राय है **राजा विश् के ऊपर है**। पूर्ववैदिक काल में **विशों का राजा के** ऊपर **पूर्ण नियन्त्रण** होता था। राजा भी राज्य की धरोहर तथा अपने को धरोहर का रक्षक समझता था। राज्याभिषेक के समय इन शब्दों के साथ राजा को राजधानी सौंपी जाती थी –**हे राजन् यह राज्य आपका है, आप इसके नियन्त्रक हैं। इसकी सुरक्षा तथा वृद्धि के लिये इसे आपको सौंपा जाता है।**

पूर्व वैदिककाल में राज्य कार्य निष्पादन में राजा की सहायता करने के लिए विशों की **दो संस्थायें** थी **सभा** और **समिति**। इन दोनों का राजा के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण भी होता था। अथर्ववेद (7.12.1) में इनको **प्रजापति की जुड़वा पुत्रियाँ** कहा गया है। **सभा** शब्द के दो अर्थ हैं –**लोगों का समूह** और वह गृह जहाँ लोग एकत्रित होते हैं। यह सभागृह **द्यूतकीडा** और **अन्य सामाजिक कार्यों** के लिए होता था। सभा के लोगों को **सभासद** कहा जाता था और इसके **अध्यक्ष को सभापति**। सभा का सदस्य बनना गौरवपूर्ण होता था। लोग यही कामना करते थे कि उसका पुत्र **सभेय**

हो (ऋग्वेद 1.91.20, वा.सं. 22.22)। ऋग्वेद (2.24.13) में सभा का सदस्य बनने के लिए स्तुतियों के साथ **ब्रह्मणस्पति देवता** को आहुतियाँ प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। मैत्रायणी संहिता (2.2.1) में ग्राम के न्यायाधीश **ग्रामवादिन्** के न्यायालय को सभा कहा गया है। वाजसनेयी संहिता (30.6) में **सभाचर** का उल्लेख है जो **सभा का सदस्य** होता था।

समिति से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ भी वैदिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं यह एक सामान्य सभा थी जिसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते थे। समिति की बैठकों की **अध्यक्षता राजा स्वयं** करता था। इस समिति को **संसद** नाम से भी जाना जाता था और इसके सदस्यों को भी **संसद** कहा जाता था। समिति की बैठकों में राज्य के अधिकारी विभिन्न स्थानों के लोगों के सामने **राजा द्वारा प्राप्त धन की घोषणा** करते थे। ऋग्वेद (8.45.25) सभी विषयों में **सभी की सहमति** अपेक्षित थी।

वैदिक भारत के राजनैतिक इतिहास में **राजा के साथ-साथ पुरोहित** का महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजा और पुरोहित जो क्रमशः **क्षत्र** और **ब्रह्म** बल का प्रतिनिधित्व करते थे, वैदिक प्रशासनरूपी **रथ के दो पहिये** थे। पुरोहित ब्राह्मण होता था किन्तु वह केवल धार्मिक कार्यों के सम्पादन में ही राजा की सहायता नहीं करता था अपितु राजा के सम्पूर्ण राजनीतिक मामलों के समाधान में वह अपनी भूमिका निभाता था। यहाँ तक कि युद्धकाल में भी वह राजा के साथ युद्धभूमि में जाता था और वहाँ अपने राजा की विजय के लिये देवताओं से प्रार्थना करता था। ऋग्वेद (4.50.7-9) में ब्राह्मण पुरोहित की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि **वही राजा अपने राज्य में सुप्रतिष्ठित होता है जिसके शासन में ब्राह्मण पुरोहित का सम्मान होता है।** अथर्ववेद (5.17–19) में ब्राह्मण पुरोहित की महिमा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। गौतम धर्मसूत्र (11.14.15) के अनुसार राजा को सभी धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिए एक अच्छे कुल के विद्वान् वक्ता, सुन्दर, उचित आयु के, गुणी, उच्च चरित्र वाले तथा अच्छे स्वभाव वाले ब्राह्मण को अपना पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (2.5.10,14) के अनुसार पुरोहित को धर्मशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में पूर्ण पारंगत होना चाहिये। श्रौतसूत्रों में **पुरोहित** पद के अभ्यर्थी के लिए **बृहस्पति सव** नामक यज्ञ का विधान है।

वैदिक ग्रन्थों (शतपथ ब्राह्मण 5.3.1.1-13) में प्रशासनिक व्यवस्था के घटक कई अधिकारियों का उल्लेख प्राप्त है। राजसूय याग में **रत्न हवींषि** नामक व्यक्तियों के प्रसंग में राजदरबार के **11 अधिकारियों** का उल्लेख है जिन्हें **रत्निन्** कहा जाता था। ये रत्निन् थे–**महिषी, पुरोहित, सेनानी, सूत, क्षत्तृ, संग्रहीतृ, भागदुघ, अक्षावाप, रथकार, ग्रामणी तथा पालागल।** राज्य के स्थायित्व के लिए राजा के साथ इनका सामनस्य आवश्यक था क्योंकि इनमें से किसी के भी रुष्ट होने से राज्य **संकटापन्न** हो सकता था। राज्य के अधिकारियों की गतिविधियों तथा विशों की स्थिति के विषय में राजा को हमेशा जानकारी देते रहने के लिए **गुप्तचर विभाग** भी सक्रिय था। गुप्तचर के लिए **स्पश्** शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। राजा के सन्देशवाहक भी होते थे जिनको **दूत** कहा जाता था। दूत ही विभिन्न राज्यों के साथ संचार के साधन थे। पूर्व वैदिक साहित्य से उस समय की प्रचलित न्याय प्रणाली तथा कानून के विषय में हमें बहुत अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती, किन्तु धर्मसूत्रों में इसका अधिक विवेचन प्राप्त होता है।

5.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! वैदिक साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित इस खण्ड में आपने वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों का अध्ययन किया तथा यह जाना कि किस वेद से कौन से ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् सम्बद्ध है। अध्ययन के इस क्रम में आपने वैदिककालीन भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विषय में भी प्रस्तुत इकाई के माध्यम से अध्ययन किया। इस इकाई के माध्यम से आपने जाना कि वैदिककालीन **नदियों, पर्वतों** एवं **समुद्रों** का स्वरूप तत्समय से अद्यावधि पर्यन्त निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। स्त्री-पुरुष की **सामाजिक स्थिति शिक्षा, विवाह, कुल परम्परा** इत्यादि का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। मनुष्य का **रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान तत्कालीन पर्यावरण, मौसम एवं भौगोलिक स्थिति** के आधार थे। एवमेव **व्यापार, यातायात** का स्वरूप भी आवश्यकतानुसार काल सापेक्ष में परिवर्तित होता आया है। वर्तमान **राजव्यवस्था** की प्रक्रिया भी पुरातन काल से भिन्नता रखती है। यह भी समयानुसार परिष्कृत एवं परिवर्तनशीला है।

5.7 शब्दावली

प्रकृत – स्वाभाविक, प्रस्तुत, प्रकरणगत।

सोदका – जल से युक्त अथवा जल के साथ।

अनुदका – जल रहित।

घर्मरक्षणार्थ – गर्मी से रक्षा के निमित्त।

एतद्रूप – इस प्रकार का रूप।

क्रीत – खरीदा/क्रय किया हुआ।

अनन्तर – बाद में, पश्चात्।

संकटापन्न – संकट से युक्त/विपत्तिग्रस्त

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ऋग्वेद, सम्पादक – श्रीपाद दामोदर सातवलेकर।
2. वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।
3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम खण्ड – वेद, सम्पा. प्रो. ब्रजबिहारी चौबे, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।
4. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, लेखक – वासुदेवशरण अग्रवाल।
5. महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक काल के पर्वतों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. वैदिक युग की नदियों के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. वैदिककालीन नारी की स्थिति पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
4. वैदिककालीन वेशभूषा पर प्रकाश डालिए।
5. वेदकाल में कृषि पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
6. वैदिक युग में प्रचलित उद्योगों पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 6 वैदिक-यज्ञ-मीमांसा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- वैदिक यज्ञों के यथार्थ स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- श्रौत-स्मार्त आदि प्रमुख यज्ञों के भेदों को समझ सकेंगे।
- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक यागों के माहात्म्य का प्रतिपादन कर सकेंगे।
- वैदिक यागों में निहित विविध अर्थवादों का आकलन आधुनिक समयानुसार कर सकेंगे।
- यज्ञ की विभिन्न संस्थाओं के सूक्ष्म रूप से परिचित होकर स्वज्ञाति समूह एवं अन्यान्य स्थलों में विद्यमान जनसामान्य को सम्बद्ध तथ्यों से अवगत करा सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

यज्ञ वैदिक धर्म का आधार है। अग्नि में विविध देवताओं को उद्दिष्ट कर हविष्य/सोमरस का हवन यज्ञ **(द्रव्यं देवता त्यागः कात्यायन श्रौतसूत्र)** के नाम से अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञसंस्था का विस्तृत वर्णन है। इस संस्था का सर्वाङ्ग विवेचन कल्पसूत्रों के आलोक में ही हो सकता है। कल्पसूत्रों के मुख्यतः तीन प्रकार हैं– श्रौत, गृह्य एवं शुल्ब। श्रौतसूत्रों में सप्त हविर्याग, सप्त सोमयाग तथा सत्र यागों का वर्णन है। गृह्यसूत्रों में सप्त पाकयागों का तथा अन्य संस्कार आदि गृह्यकर्मों का निरूपण है। शुल्बसूत्रों में अग्निहोत्रशाला, श्रौतागार तथा चयन चितियों का वर्णन प्राप्त होता है। त्रिविध संस्था भेद से याग अधोलिखित है –

क) **पाक-यज्ञ संस्था** – औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिक श्राद्ध, श्रवणा, शूलगव।

ख) **हविर्यज्ञ संस्था** – अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास (दर्शपौर्णमास), आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ।

ग) **सोम संस्था** – अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम।

सप्त सोमयागों के अतिरिक्त श्रौतसूत्रों में अहीन तथा सत्रयाग भी होते हैं, जिनमें सोम संस्थाओं के प्रयोग कर्मों का ही पुनः-पुनः आवर्तन होता है। उपर्युक्त संस्था त्रय का अनुष्ठान आहिताग्नि ही कर सकता है। उस आहिताग्नि का विवाहित तथा जीवित पत्नीक होना अनिवार्य होता है, यतो हि अग्न्याधान में दम्पती का अधिकार होता है, अविवाहित एवं विधुर का नहीं।

स्मार्त एवं श्रौत के भेद से अग्नि 05 प्रकार का है। आवसथ्याग्नि/गृह्याग्नि एवं सभ्याग्नि स्मार्त की है तथा गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि एवं दक्षिणाग्नि इस प्रकार यह 03 श्रौताग्नियाँ हैं, जो अनुष्ठानार्थ पूर्व अर्थात् स्मार्ताधान की अपेक्षा रखती हैं। पूर्वोक्त संस्था त्रय (पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ) का संक्षिप्त विवरण क्रमशः अधोलिखित है –

6.2 पाकयज्ञ

स्मार्ताग्नि में सम्पाद्यमान पाकयज्ञ के अन्तर्गत परिगणित सप्तयागों का विवरण अधोलिखित है –

6.2.1 औपासन होम

सायंकाल और प्रातःकाल दही से, चावलों/अक्षतों से **दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा** इस प्रकार **पारस्कर गृह्यसूत्र (1.8.3)** में उक्त पदार्थों द्वारा हस्तसम्पाद्य होम **औपासनहोम** है। इस होम में **सायंकाल में अग्नि प्रधान** देवता है तथा **प्रजापति स्विष्टकृत् के स्थानापन्न अङ्ग** देवता है, **प्रातःकाल में सूर्य प्रधान** देवता है तथा **प्रजापति अङ्ग** देवता है। इसका **प्रारम्भ सायंकाल** से किया जाता है। यह सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक **एक कर्म** के रूप में परिगणित होता है, अतः सम्मिलित दोनों का एक फल है। दोनों के पृथक्-पृथक् फल नहीं हैं। अतएव दोनों में द्रव्य और कर्ता एक ही होना आवश्यक है। सपत्नीक पुरुष द्वारा ही यह होम आजीवन किया जाता है।

6.2.2 वैश्वदेव

वैश्वदेव कर्म का नाम है। इस कर्म में विश्व अर्थात् समस्त देवताओं का यजन होता है, अतः **वैश्वदेव** कहलाता है। इसका अपर नाम पंच महायज्ञ है। शतपथ ब्राह्मण (11.5.5.1) में कहा गया है–**देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, ब्रह्मयज्ञ**। यह भी गृहस्थ का नित्य कर्म है। अन्यान्य शाखाओं में सायं और प्रातः में अनुष्ठान का विधान है। माध्यन्दिन शाखा में प्रातःकाल में ही अनुष्ठान का विधान होने से एक ही वेला (प्रातःकाल) में यह अनुष्ठेय है।

6.2.3 पार्वण

प्रत्येक अमावास्या में अनुष्ठेय कर्म पार्वण है। यह भी नित्य है। इसके अन्तर्गत पितृ तथा मातृ उभयपक्ष का ग्रहण होता है। पितृपक्ष में पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही तथा प्रपितामही को पिण्डदान किया जाता है। मातृपक्ष में मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह एवं मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही को पिण्डदान का विधान है। पार्वण का अर्थ है–**पर्वणि भवम् पार्वणम्**। पर्व शब्द से चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा का ग्रहण किया जाता है यथा हि –

चतुर्दश्याष्टमी चैव अमावस्या च पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च।।

6.2.4 अष्टका

मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अनन्तर तीन अष्टका **ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोष्टकाः** इस पारस्कर गृह्यसूत्र (3.3.1) द्वारा हेमन्त और शिशिर की कृष्णपक्षीय चार अष्टमी तिथियों में अपूप (पूए), गोमांस एवं शाक से इन्द्र (पौष कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय), विश्वेदेव (माघ कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय), प्रजापति (फाल्गुन कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय) तथा पितरों (चैत्र कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय) के निमित्त सम्पादनीय अष्टका नामक श्राद्ध कर्म कहलाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के मत से साग्निक पुरुष को इसे अवश्य करना चाहिये एवंविध ज्ञापन होने पर भी उसमें गोमांसरूप द्रव्य का विधान है और कलियुग में गवालम्भन निषिद्ध है, उसका प्रतिनिधिभूत दूसरा कोई द्रव्य बतलाया नहीं गया अतएव माध्यन्दिन शाखा में उसका लोप ही हो गया है। अन्य शाखानुयायियों का, जिनके लिए मांस का विधान नहीं है, नित्य रूप से ही उसका अनुष्ठान होता है।

6.2.5 मासिक/मासि श्राद्ध

महीने-महीने में सम्पादनार्ह कर्म मासि श्राद्ध है। यतो हि **मासि-मासि वोऽशनम्** ऐसी शतपथ की श्रुति है। यह मूलतः एकोद्दिष्ट श्राद्ध है। एक को लक्ष्य कर विधीयमान श्राद्ध को एकोद्दिष्ट कहते हैं।

6.2.6 श्रवणा

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा से प्रारम्भ कर मार्गशीर्ष की पौर्णमासी तक प्रतिदिन सायंकाल सर्पों के निमित्त सम्पादनीय बलिदान श्रवणाकर्म है, **अथातः श्रवणाकर्म** (पारस्कर गृह्यसूत्र 2.14.1)। इसके अन्तर्गत स्थालीपाक तैयार कर अक्षतधान्य को पकाकार उसको पुरोडाश के रूप में पकाकर प्रोक्षण आदि करना चाहिए। एतदनन्तर **अपश्वेतपदाजहि•** प्रभृति मन्त्र से घृत की आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। तदनन्तर

चरु की चार आहुतियाँ प्रदान करने का विधान है। विष्णु, श्रवणा आदि को समन्त्रक आहुति प्रदान के अनन्तर **धानावन्तं•** मन्त्र के द्वारा पिष्ट धान्यों की एक आहुति तथा घृतमिश्रित सत्तू की आहुतित्रय सर्पों के निमित्त प्रदान करने का विधान है।

6.2.7 शूलगव

शूलगव भी **अथ शूलगवः** (पारस्कर गृह्यसूत्र 3.8) इत्यादि से विहित एक कर्म है। यह स्वर्ग, पशु, पुत्र, धन, यश तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था इसमें गाय रूप द्रव्य का हवन रुद्र देवता के निमित्त होता है। कलिकाल में गवालम्भन निषिद्ध होने से इसका भी अनुष्ठान नहीं होता। अन्य शाखा वालों में **ईशानाय स्थालीपाकं श्रपयित्वा** (आपस्तम्ब गृह्यसूत्र 9.13) से गाय के स्थान पर स्थालीपाक का विधान होने से उसका अनुष्ठान होता है।

6.3 हविर्यज्ञ

हविर्याग की प्रमुख सप्त संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है –

6.3.1 अग्निहोत्र

अग्नि की तृप्ति को उद्दिष्ट कर श्रौताग्नि पर अग्निहोत्र सम्पादित किया जाता है। श्रौताधान कर लेने के अनन्तर यह अनुष्ठेय हो सकता है। **अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः** प्रकृत विधिवाक्य के आधार पर अग्निहोत्र के द्वारा स्वर्ग रूप इष्ट का साधन करना चाहिए। एकबार प्रारम्भ करने पर इसका निर्वाह यावज्जीव करना पड़ता है। यह नित्यकर्म की श्रेणी में आता है। आधान का ग्रहण त्रिविध किया जाता है–**होमपूर्वक, इष्टिपूर्वक, सोमपूर्वक**। पर-पर वाले प्रकार में पूर्व-पूर्व वाले की समस्त इतिकर्त्तव्यताओं का समावेश होता है। यह यजमान को स्वयं करना चाहिए, यथा –

सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमं समाचरेत्।
स्वयं होमे फलं यत्स्यान्न तदन्येन जायते।।
होमे यत्फलमुद्दिष्टं जुह्वतः स्वयमेव तु।
हूयमाने तदन्येन फलमर्धं प्रजायते।।

(देवयाज्ञिक पद्धति पृ. 130)

सायं प्रातः को एक कर्म परिगणित किया जाता है **(सायमादिप्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते कात्यायन स्मृति 18.1)**। इसके प्रमुख द्रव्य दुग्ध, तेल, दही, सोमरस, लपसी, भात, घी, चावल फल, जल इत्यादि है। स्विष्टकृत् स्थानापन्न प्रजापति अंग देवता है। अग्नि मुख्य देवता है। दोनों समय का द्रव्य एक ही होना चाहिए। इसके अनुष्ठान में दो पक्ष हैं– प्रथम में सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व और प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हवन करने का विधान है। द्वितीय पक्ष में सायंकाल सूर्यास्त के बाद और प्रातःकाल सूर्योदयोपरान्त हवन किया जाता है। इन दोनों पक्षों में से किसी एक का आश्रयण किया जाता है।

6.3.2 दर्शपूर्णमास

सर्वेभ्यो कामेभ्यो दर्शपूर्णमासौ (वैखानस श्रौतसूत्र 14.1) अर्थात् सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थ इस याग का अनुष्ठान किया जाता है। श्रौताधानी यजमान दर्श और पौर्णमास का

क्रमशः अमावस्या और पूर्णिमा को नित्य रूप से अनुष्ठान करता है। अग्नि के परिग्रह के अनन्तर प्रथम बार प्रारम्भ पूर्णिमा से ही किया जाता है।

यजमान, यजमान पत्नी, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र यह छः इस याग को सम्पादित करते हैं। इसमें तीन-तीन दोनों में इस प्रकार छः याग होते हैं। पूर्णिमा के दिन अग्नि के निमित्त आठ कपाल का पुरोडाश, अग्नीषोम हेतु घृत का उपांशु याग एवं अग्निषोम के ही निमित्त एकादश कपाल का पुरोडाश ये तीन होते हैं तथा अमावस्या के दिन अग्नि के निमित्त आठ कपाल का पुरोडाश, इन्द्र हेतु दधियाग तथा इन्द्र के ही निमित्त दुग्ध का तीसरा याग इस प्रकार दोनों मिलाकर छः याग होते हैं। उपर्युक्त छः याग सान्नाय्ययाजी के हैं। आधान के अनन्तर जो सोमयाग कर चुका है वह ही सान्नाय्ययाजी हो सकता है। सान्नाय्य दधि और दूध का वाचक है। यह सोमयाजी हेतु नित्य है। **कामादितरः (कात्यायायन श्रौतसूत्र 4.1.27)** सूत्र से यह ऐच्छिक है। यदि सामान्य (सोमयाजी से रहित) दर्श याग है तो अग्नि का आठ कपाल तथा इन्द्राग्नी का द्वादश कपाल का पुरोडाश तथा मध्य में अग्नीषोम के निमित्त उपांशु याग घृत से करने का विधान है। इन दोनों यागों में अन्वाहार्य दक्षिणा होती हैं। हविर्द्रव्य में व्रीहि एवं यव प्रमुख है।

6.3.3 आग्रयण

नवीन अन्न की उत्पत्ति के अनन्तर, जिसका अयन/अनुष्ठान हो वह आग्रयण है। यह वर्ष में चार बार **(अनयोर्वा अयं द्यावापृथिव्यो रसोऽस्य रसस्य हुत्वा देवेभ्योऽथेममश्नामेति तस्माद्वा आग्रयणेष्ट्या यजते, शतपथ ब्राह्मण 2.3.5.1)** की जाती है। इसका अनुष्ठान शरत् और वसन्त में करना चाहिए। इसमें हवनीय द्रव्य इन्द्राग्नि के लिए पुरोडाश और द्यावापृथिवी के लिए चरु है। विश्वेदेव के निमित्त चरु जौ का होता है। दक्षिणा टूटने पर मरम्मत किया गया रथ/रेशमी वस्त्र, अथवा मधुपर्क/वर्षा में धारण किया गया वस्त्र होती है। यह इष्टि नित्य है। इसके सम्पादन के उपरान्त ही नवीन अन्न भक्षण करना चाहिए इसे नवान्नेष्टि भी कहते हैं।

6.3.4 चातुर्मास्य

यह कर्मचार महीनों **(चतुर्षु मासेषु भवन्ति, कात्यायन श्रौतसूत्र कर्क भाष्य 5.1.1)** में अनुष्ठित होने के कारण चातुर्मास्य कहलाता है। इनमें चार पर्व होते हैं–**वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुनासीरीय**। इसके अन्तर्गत प्रथम पर्व का फाल्गुन की पूर्णिमा **(फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयोगश्चातुर्मास्यानाम्। वैश्वानरीयपार्जन्येष्टिः पूर्वस्यां पौर्णमास्याम्। पर्जन्याय यस्य व्रते। उत्तरस्यां वैश्वदेवम्। शांखायन श्रौतसूत्र 3.13.1-5)** में अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर चार मास व्यतीत होने पर आषाढ़ की पूर्णिमा **(आषाढ्यां वरुणप्रघासाः। शांखायन श्रौतसूत्र 1.13.8)** को दूसरा पर्व, तदनन्तर चार मास व्यतीत होने पर कार्तिक की पूर्णिमा **(कार्तिक्यां साकमेधाः। शांखायन श्रौतसूत्र 3.15.1)** को तीसरा पर्व, तदुपरान्त चार मास होने पर फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा **(साकमेधैरिष्ट्वान्वक्षं शुनासीर्यम्। माघ्यां वा पौर्णमास्याम्, शांखायन श्रौतसूत्र 3.18,17-18)** को चौथा पर्व करना चाहिये। एवंविध पुनः-पुनः आवृत्ति करनी चाहिये। प्रत्येक पर्व का संक्षिप्त विवरण अधोलिखितानुसार है –

प्रथम पर्व (वैश्वदेव) – इस प्रथम पर्व में अग्नि देवता का अष्ट कपाल पुरोडाश, सोम का चरु, सविता का अष्ट कपाल/द्वादश कपाल पुरोडाश, सरस्वती का चरु, पूषा को आटे का चरु, केवल मरुतों का/स्वतवद्गुणविशिष्ट मरुतों का सप्तकपाल

पुरोडाश, विश्वेदेव के लिए पयस्या (फटे हुए दूध का तरल अंश), द्यावापृथिवी का एककपाल पुरोडाश ये आठ हवि होते हैं। इन यागों में दर्शपूर्णमास प्रकृति हैं, इसलिए ये पृथक् धर्मवाले नहीं कहे जाते हैं। केवल प्रयाज और अनुयाजों में **नवप्रयाजं नवानुयाजम्** इस सूत्र से नवत्व **त्रीणि समिष्टयजूंषि** और वाजि देवता वाला याग यह विशेष है। इसी वैश्वदेव पर्व के धर्मों की अन्य पर्वों में अनुवृत्ति होती है। इसके अन्तर्गत विश्वेदेव सम्बन्धी आमिक्षा याग होता है वह अन्य आमिक्षा यागों की प्रकृति है। इसमें ऋत्विक् दर्शपूर्णमास के अनुसार होते हैं।

द्वितीय पर्व (वरुणप्रघास) – वैश्वदेव में जितने हविर्द्रव्य कहे गये हैं, उनमें से पहले के पाँच हविर्द्रव्यों के अतिरिक्त चार हविर्द्रव्य और होते हैं– इन्द्राग्निदेवत्य द्वादशकपाल पुरोडाश, वरुण के लिए आमिक्षा, मरुत् के लिए आमिक्षा, प्रजापति (ब्रह्मा) के लिए एककपाल पुरोडाश। इसमें दो वेदियाँ होती हैं– दक्षिण और उत्तर। ऋत्विक् वैश्वदेव पर्व के अनुसार ही होते हैं। एक प्रतिप्रस्थाता अधिक होता है। वही दक्षिण वेदी में होने वाले कर्मों को करता है। इस पर्व में और साकमेध पर्व में उत्तरवेदी और अग्नि प्रणयन अधिक है। इसी प्रकार करम्भ पात्रों का निर्माण और उनका होम इस पर्व में अधिक है। दम्पति तीर्थ में स्नान करते हैं। इस पर्व की दक्षिणा धेनु, अश्व अथवा छः/बारह गायें हैं, ऐसा विकल्प है।

तृतीय पर्व (साकमेध) – कार्तिक मास की पूर्णिमा को साकमेध नामक पर्व का अनुष्ठान होता है। पहले दिन प्रातःकाल अनीकवतीष्टि उद्धरणादि से लेकर कर्मसमाप्ति के कर्म तक होते हैं। उसमें अनीकवान् अग्नि देवता, अष्टाकपाल पुरोडाश हवनीय द्रव्य और अन्वाहार्य दक्षिणा है। मध्याह्न में सान्तपनेष्टि होती है। उसमें सान्तपन मरुत् देवता, चरु हवनीय द्रव्य और अन्वाहार्य दक्षिणा है। सायंकाल गृहमेधीय इष्टि होती है, उसमें गृह-मेधीय मरुत् देवता, दूध में पका हुआ पायस (खीर) चरु हवनीय द्रव्य और वृषभ दक्षिणा है। इसमें सायंकाल और प्रातःकाल लपसी से अग्निहोत्र होम करना चाहिये।

तदुपरान्त दूसरे दिन पूर्णिमा को प्रातःकाल उद्धरण से लेकर कर्म समाप्तिपर्यन्त हर्विहोम होता है। इसमें सब क्रियाएँ अमन्त्रक करनी चाहिये। इसमें भी वृषभ ही दक्षिणा है। तदनन्तर क्रीडनीयेष्टि होती है। उसमें क्रीडावान् मरुत् देवता हैं, हवनीय द्रव्य पुरोडाश है, अन्वाहार्य दक्षिणा है। तदनन्तर अदितीष्टि होती है। उसमें अदिति देवता का हवनीय द्रव्य चरु और अन्वाहार्य दक्षिणा है। उसके बाद महाहवि नामक इष्टि उत्तर वेदी में करनी चाहिये। एतदनन्तर पितृयज्ञ (पित्र्येष्टि) होती है। एतदर्थ दक्षिण दिशा में दक्षिणमुख विहार (मण्डप) बनाया जाता है। सोम वाले पितर अथवा पितृमान सोम, बर्हिषद्पितर एवं अग्निष्वात्ता पितर देवता हैं। षट्कपाल पुरोडाश, धाना (भुने हुए जौ) और मन्थ क्रमशः हवनीय द्रव्य हैं। तदुपरान्त त्र्यम्बकेष्टि होती है इसमें रुद्र (त्र्यम्बक) देवता हैं, एककपाल में संस्कृत चार पुरोडाश हवनीय द्रव्य हैं। एक ही अध्वर्यु ऋत्विक् है। इसमें दक्षिणा वृषभ है।

चतुर्थ पर्व (शुनासीरीय) – तदनन्तर शुनासीरीय नाम का चौथा पर्व होता है। इसमें पौर्ण-मास के सब धर्म होते हैं। इसमें भी वैश्वदेव पर्व में कहे गये पाँच हविर्द्रव्य पूर्ववत् होते हैं। इनके अतिरिक्त शुनासीर (वायु और आदित्य) के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश, वायु के लिए दूध/लपसी, सूर्य के लिए एककपाल पुरोडाश है और दक्षिणा छः बैलों से युक्त हल अथवा बड़े-बड़े दो बैल। सौर की दक्षिणा सफेद घोड़ा/गाय है।

चातुर्मास्य याग में दो पक्ष हैं, उत्सर्ग पक्ष और जीवनपर्यन्त पक्ष। एक बार चातुर्मास्यों से यज्ञकर तदुपरान्त जो पशु, सोम आदि से यह करता है, फिर चातुर्मास्यों से यज्ञ नहीं करता वह उत्सर्ग पक्ष है। चातुर्मास्यों से ही प्रतिवर्ष जीवन भर यजन करना चाहिए, यह यावज्जीवन पक्ष है।

चातुर्मास्य त्रिविध होते हैं– ऐष्टिक, पाशुक और सौमिक। उनमें से पहले जिनके विषय में अवगत कराया गया है, वे ऐष्टिक हैं। ऐष्टिक तीन तरह के होते हैं– सांवत्सरिक, पाञ्चाहिक और ऐकाहिक।

6.3.5 निरूढ़पशुबन्ध

प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु **(पश्विज्या संवत्सरे संवत्सरे प्रावृषि, कात्यायन श्रौतसूत्र 6.1.1)** में इसका अनुष्ठान करना चाहिए। उत्तरायण एवं दक्षिणायन **(आवृत्तिमुखयोर्वा कात्यायन श्रौतसूत्र 6.1.2)** के प्रारम्भ में दो बार विकल्प से इसका अनुष्ठान किया जाता है। इसमें छाग की वपा हवनीय द्रव्य है। इसमें इन्द्राग्नि सूर्य/प्रजापति वैकल्पिक देवता हैं। इसमें मैत्रावरुण नामक ऋत्विक् अतिरिक्त होता है। यह अग्निष्टोम प्रकृति का है। पशुबन्धनार्थ काष्ठ यूप खैर/बेल का होता है। यह अष्टकोणीय होता है। इसमें 11 प्रयाज एवं 11 ही अनुयाज का विधान है। प्रथम दश प्रयाजों का यजन पशु जब यूप में बंधा हो तब तथा अवशिष्ट एक का संज्ञपन के बाद किया जाता है। इसमें गौ आदि पशु निर्धारित है। धेनु अथवा वर वैकल्पिक दक्षिणा है।

6.3.6 सौत्रामणी

सुत्राम्ण इयं सौत्रामणी इस व्युत्पत्ति से इन्द्र देवता के निमित्त सम्पाद्यमान याग को सौत्रामणी याग कहते हैं। इसके प्रधान देवता इन्द्र हैं। अतः इन्द्रयाग भी कहा जाता है। स्वतन्त्र और अंगभूत दो प्रकार से इसका अनुष्ठान किया जाता है। अग्निचयन के सम्बन्ध में अंगभूत होकर अनुष्ठित होता है। यह पुनः नित्य, नैमित्तिक के भेद से तीन प्रकार का होता है। किसी उद्‌देश्य से रहित नित्य, यह नित्य ही सप्त हविः संस्था में परिगणित है। सोम के वमन होने पर **(सोमवामिनाम्, कात्यायन श्रौतसूत्र 19.1.2)** अनुष्ठित नैमित्तिक तथा ऋद्धिप्रापणार्थ **(ब्राह्मणयज्ञः सौत्रामण्यृद्धिकामस्य, कात्यायन श्रौतसूत्र 19.1.1)** अर्थात् फलाकांक्षा से युक्त काम्य होता है। ऐसी स्थिति में इसे ब्राह्मण यज्ञ कहते हैं।

चरक एवं कोकिल सौत्रामणी के दो प्रकार हैं। इस याग में अश्वि के निमित्त अज, सरस्वती के निमित्त वृषभ स्थानापन्न मेषी एवं इन्द्र के लिए वृषभ का विधान प्राप्त होता है। सौत्रामणी, इष्टि के रूप में तथा पशुबन्ध के रूप में विहित होने के कारण यह उभयात्मक है। अग्निचयनांगभूत अनुष्ठान त्रैवर्णिक कर सकते हैं एवं ऋद्धि के निमित्त यह केवल ब्राह्मण द्वारा ही अनुष्ठेय है। यह राज्यच्युति होने पर पुनः राज्य प्राप्ति एवं पशु के निमित्त भी अनुष्ठित किया जाता है।

6.3.7 पिण्डपितृयज्ञ

मासि मास्येव पितृभ्यः शतपथ ब्राह्मण (2.3.4.8) के इस वचन के आधार पर अमावास्या **(अपराह्णे पिण्डपितृयश्चन्द्रादर्शने मावास्यायाम्, कात्यायन श्रौतसूत्र 4.1.1)** के दिन यह अनुष्ठान होता है। यह कृत्य स्वतन्त्र है क्योंकि इसके अनुष्ठान का समय निश्चित है– **पितृयज्ञः स्वकालात्वादनङ्गंस्यात्** (जैमिनीय सूत्र 4.4.19)। इसके अन्तर्गत ओदन के पिण्ड से पितृगण की उपासना की जाती है। यह ओदन का

पाक दक्षिणाग्नि में होता है। अग्निहोत्री के लिये यह कार्य नित्य है। यदि अग्निहोत्री का पिता जीवित हो तो वह होमान्त ही पिण्डपितृयज्ञ करे अथवा नहीं करे एवंविध शास्त्र व्यवस्था है।

6.4 सोमयज्ञ

सोमरस की आहुति जिस याग में दी जाती है, उसे सोमयाग कहा जाता है। सोम की प्रमुख सप्त संस्था के अतिरिक्त भी अग्निचयन याग, क्रतु, सत्र, मेध प्रभृति भी सोम के ही भेद-प्रभेद हैं।

क) उपर्युक्तानुसार प्रमुख सप्त सोम संस्था अधोलिखित हैं–

1. **अग्निष्टोम – सर्वकामोऽग्निष्टोमः** समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु यह अग्निष्टोम याग किया जाता है। ज्योतिष्टोम **(त्रिवृत्, पंचदश, सप्तदश और एकविंश ये चार स्तोम ज्योति कहलाते हैं, ज्योति जिसके स्तोम हों वह ज्योतिष्टोम है)** की चार संस्था है। जिनमें अग्निष्टोम यह सोम की सप्त संस्थाओं में प्रथम है। यह संस्था का नाम स्तोत्र परक होता है, अन्त में जिस स्तोत्र का गान होता है, उसी के आधार पर संस्था का नाम होता है। स्तोत्र द्वारा अग्निदेवता की स्तुति की जाती है। यह सोम याग की प्रकृति है। अग्निष्टोम में **यज्ञायज्ञा वो अग्नये** इस ऋचा का गान होता है। इसका अनुष्ठान वसन्त ऋतु में किया जाता है। इसमें आरम्भ का दिन, दीक्षा का दिन और सुत्या का दिन इस प्रकार तीनों दिन शुभ होने चाहिए। यह पाँच दिवस में सम्पन्न होता है। प्रायशः यह शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमापर्यन्त किया जाता है। इसमें गणानुसार अधोलिखित षोडश ऋत्विक् होते हैं –

अध्वर्युगण	ब्रह्मगण	होतृगण	उद्गातृगण
1. अध्वर्यु	1. ब्रह्मा	1. होता	1. उद्गाता
2. प्रतिप्रस्थाता	2. ब्राह्मणाच्छंसी	2. मैत्रावरुण	2. प्रस्तोता
3. नेष्टा	3. आग्नीध्र	3. अच्छावाक्	3. प्रतिहर्ता
4. उन्नेता	4. पोता	4. ग्रावस्तुत्	4. सुब्रह्मण्य

उपर्युक्तानुसार ही दक्षिणा भी अधिक/न्यून होती है।

2. **अत्यग्निष्टोम** – सोमयाग की अत्यग्निष्टोम संज्ञक यह द्वितीय संस्था है**(षडुत्तरेऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयोऽतिरात्रोप्तोर्यामः कात्यायन श्रौतसूत्र 10.9.27)**। यह अग्निष्टोमयाग की विकृति **(उक्थ्यषोडश्यतिरात्राणामग्निष्टोमविकारत्वम्। अत्यग्निष्टोमस्य च देवयाज्ञिक पद्धति पृष्ठ 379)** है। इसमें सपत्नीक यजमान एवं सोलह ऋत्विज याग का कार्य सम्पादित करते हैं। विशेष विधि को छोड़कर शेष सब विधि प्रकृतिभूत अग्निष्टोमयागवत् होती है।

   यजमान के सङ्कल्पोपरान्त अध्वर्यु यागकृत्य प्रारम्भ करता है। इसमें एक आग्नेय पशु अज का आलम्भन होता है। इस याग में तेरह ग्रहपात्र, तेरह शस्त्र का पाठ और तेरह स्तोत्र का गान होता है। ग्रहपात्र के आसादन के समय खादिर काष्ठ का चतुरस्र मुँहवाला, षोडशी संज्ञक, एक ग्रहपात्र आसादित किया जाता है। इसे आश्विन ग्रहपात्र से पश्चिम की ओर रखना चाहिए। तीनों सवन में से किसी एक

सवन में आग्रयणग्रहण के अनन्तर/पृष्ठ्योपाकरण से पूर्व इस पात्र में समन्त्रक सोमरस का ग्रहण होता है। तृण स्पर्श से स्तोत्रोपाकरण होता है। शस्त्र पाठ के समय अध्वर्यु ओथामो दैव, मोदामो दैव और अन्त में प्रणव से प्रतिगर किया जाता है। षोडशी ग्रहपात्र से इन्द्र के निमित्त किये गये याग का इन्द्र ही के निमित्त त्याग करना चाहिए। शेष अग्निष्टोमवत् याग की समाप्ति होती है। अन्त में याग के निमित्त एक सहस्र ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

3. **उक्थ्य**—यह सोमयाग की उक्थ्यसंज्ञक याग तीसरी संस्था है। यह अग्निष्टोमयाग की विकृति **(उक्थ्यषोडश्यतिरात्राणामग्निष्टोमविकारत्वम्, देवयाज्ञिक पद्धति पृष्ठ 379)** है। **उक्थ्येन पशुकामो यजेत (सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र 9.7)** पशु की अभिलाषा से उक्थ्ययाग किया जाता है। यजमान ससङ्कल्प इसे प्रारम्भ करता है। इसमें अग्नि के लिए एक और इन्द्र के लिए एक इस प्रकार दो अज पशु आवश्यक है। इसी के अनुसार पाशुक पात्रासादन करना चाहिए। इस याग में ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र इन तीनों की संख्या पन्द्रह रहती है।

   पुरोडाश के क्रम में अग्नि का अष्ट कपाल का, इन्द्राग्नी का बारह कपाल का रहता है। अङ्गावदानश्रपण के निमित्त दोनों हृदयों को एक ही शूल में विद्ध कर तपाया जाता है। एक ही उखा का प्रयोग किया जाता है।

   पशु के अङ्गों के श्रपण के समय एक से दूसरे का मिश्रण नहीं होना चाहिए। एतदर्थ एक पशु के अङ्गों को वस्त्र से बाँधकर श्रपण किया जाता है। शेष विधान प्रकृतिस्वरूप अग्निष्टोम के समान किया जाता है।

4. **षोडशी** – षोडशी सोमयाग की चतुर्थ संस्था है। यह भी अग्निष्टोमयाग की विकृति है। विशिष्ट विधान को छोड़कर शेष कृत्य प्रकृतिवत् होते हैं। **षोडषीनां वीर्यकामः(सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र 9.7)** इस याग को वीर्य कामनार्थ किया जाता है।

   यजमान ससङ्कल्प **(चतुष्टोमेन रथन्तरपृष्ठेन हिरण्यशतगवदक्षिणेन वासोऽश्वदक्षिणेन च षोडषिसंस्थेन ज्योतिष्टोमेनाहं यक्ष्ये)** यागारम्भ करता है। इसमें पीतमुखी एवं कृष्णकर्णयुक्त गो से सोमक्रयण होता है। इसमें ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र सोलह होते हैं। ग्रहपात्रों में षोडशीसंज्ञक एकपात्र खैर की लकड़ी का, चतुरस्र मुँह वाला, अधिक होता है। इस याग में दो अज और एक मेष अपेक्षित है। अग्नि के लिए अज, इन्द्राग्नी के लिए अज और इन्द्र के लिए मेष होता है। आग्रयण ग्रह के अनन्तर षोडशीग्रह का विधान होता है। स्तोत्र के उपाकरण के समय पश्चिमाभिमुख कृष्ण अश्व खड़ा करना चाहिए। दर्भ और हिरण्य से स्तोत्र का उपाकरण किया जाता है।

   इस याग में विजातीय पशु रहने के कारण अङ्गश्रपणादि विधान में एकीकरण नहीं होना चाहिए। एतदर्थ उखा, वपाश्रपणी प्रभृति यज्ञायुधों की पृथक् व्यवस्था आवश्यक है। क्रमशः अग्नि, इन्द्राग्नी और इन्द्र देवता के निमित्त सवनीय याग होता है। याग की समाप्ति होने पर एक सहस्र ब्राह्मण भोजन होता है। याग के अनन्तर सायंकालीन हवन से अग्निहोत्र हवन का प्रारम्भ होता है। द्वितीय दिवस प्रातःकाल से प्रतिदिन अग्निहोत्र हवन करना उचित होता है।

5. **वाजपेय** – यह सोम की पंचमी संस्था है। यह षोडशी की विकृति है। **वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राड् भवति (शतपथ ब्राह्मण 5.1.1.14)** के अनुसार यह साम्राज्य की कामना से किया जाता है। इसका अनुष्ठान ब्राह्मण एवं क्षत्रिय

आहिताग्नि कर सकते हैं। यह करने से सम्राट् की उपाधि प्राप्त होती है। यह शरद् ऋतु (**शरदि वाजपेयः, शांखायन श्रौतसूत्र 15.1.1**) में अनुष्ठित किया जाता है। इसके पूर्व एवं पर में बृहस्पति सव अनुष्ठान करने का विधान है जिसे परियज्ञ कहा जाता है।

6. **अतिरात्र** – यह सोम की षष्ठी संस्था है। यह अग्निष्टोम की प्रकृति से युक्त होता है। **अतिरात्रेण ब्रह्मवर्चसकामः (सत्याषाढ श्रौतसूत्र 9.7)**, यह ब्रह्मवर्चस की कामना से अनुष्ठित किया जाता है। इसमें ग्रह, स्तोत्र तथा शस्त्र की संख्या 39 होती है। इस याग में चार पशु होते हैं। प्रथम अग्नि हेतु अज, द्वितीय इन्द्राग्नी हेतु अज, तृतीय इन्द्रार्थ मेष तथा चतुर्थ सरस्वती हेतु मेषी। पशुओं को यूप में नियोजित किया जाता है। क्रमशः संज्ञपन और प्राणशोधन भी किया जाता है। यागान्त में एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

7. **अप्तोर्याम** – सोम की यह अन्तिम और सप्तमी संस्था है। यह अतिरात्र की विकृति है। विशेष विधियों को छोड़कर शेष विधि प्रकृतिवत् होती है। **अप्तोर्यामेनपशुकामः (सत्याषाढ श्रौतसूत्र 9.7)**, पशु प्राप्ति की कामना हो तो अतिरात्रयाग किया जाता है। इस याग में ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र तैंतीस होते हैं। यजमान सङ्कल्पपूर्वक याग का प्रारम्भ करता है। इस याग में एक, तीन, बारह अथवा यथेष्ट दीक्षा होती है। सवनीय पशु अग्नि का अज, इन्द्राग्नी का अज, इन्द्र का मेष और सरस्वती की मेषी होती है। अतिरात्रवत् समस्त पाशुक विधान किया जाता है। माहेन्द्रस्तोत्र का रथ के चलने के शब्द, अरणी, दुन्दुभि के शब्द और दर्भ से उपाकरण किया जाता है। इस याग में उद्गाता के ऊरु पर अरणी रखकर अग्निमन्थन होता है। होता के शस्त्रपाठ के समय न्यूङ्खपूर्वक प्रतिगर होता है। शेष विधि अतिरात्रयाग के समान सम्पन्न होती है।

ख) सोम की प्रमुख सप्त संस्था के अतिरिक्त अन्य भी भेद दृष्टिगोचर होते है किन्तु इन सब में प्रकारान्तर से कतिपय पूर्वोक्त प्रकृति/विकृति का ही समावेश है। सोमयाग के अन्य प्रमुख भेद अधोलिखित हैं–

1. **अग्निचयन** – जिसके अन्तर्गत विशेष विधिपूर्वक इष्टका जमा कर चिति (वेदी) का निर्माण किया जाता है, वह अग्निचयन याग कहलाता है। **इष्टकाभिरग्निं चिनोति, इति च आरोहणप्रोक्षणे स्थलस्योच्येते** (कात्यायन श्रौतसूत्र कर्क भाष्य 16.1.1) के अनुसार अग्नि का आधारभूत स्थलविशिष्ट चिति का ग्रहण किया जाता है। प्रकृत में आहवनीय स्थानीय उत्तरवेदि के स्थान पर चिति निर्माण किया जाता है। प्रत्येक चिति के 05 प्रस्तार होते है। कामना के भेद से पृथक्-पृथक् संज्ञा एवं आकार वाली चितियों का निर्माण किया जाता है। चिति निर्माणार्थ विविध प्रकार की इष्टका का भी निर्माण किया जाता है यथा– वक्रेष्टका, जंघामात्री, त्रिग्राहिणी, बृहती, पद्या, अर्द्धपद्या, पादोनपद्या, पादभागा, पूर्णोत्सेधा, अर्धोत्सेधा, अर्धबृहती इत्यादि।

2. **गवामयन सत्र** – गायों के माध्यम से अनुष्ठेय होने के कारण यह गवामयन कहलाता है, **गोभिरनुष्ठितत्वाद् गवामयनम्।** इसका आरम्भ माघ कृष्ण अष्टमी, माघ शुक्ल एकादशी, फाल्गुन पौर्णमासी अथवा चैत्रपूर्णिमा को आरम्भ होता है। आरम्भ से 12 दीक्षा तथा 12 ही उपसद होते हैं। इस प्रकार 24 दिन होते हैं। सत्र याग मुख्यतः 12 दिवस से 1000 वर्ष तक की अवधि के होते हैं।

3. **राजसूय** – इसका अनुष्ठान केवल अभिषिक्त क्षत्रिय ही कर सकता है। इस याग के अनुष्ठान से **राट्** (राजा) की उपाधि प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत अनुमत्यादि इष्टियाँ, मल्हादि पशुयाग और पवित्रादि सोमयाग होते हैं। यह फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम अनुष्ठेय सोमयाग की **पवित्र** संज्ञा है। यह आठ दिवस में पूर्ण होता है। राजसूय में आहत्य 449 इष्टि, 02 पशुयाग, 08 सोमयाग तथा 07 दर्विहोम यह राजसूय पद से वाच्य है। इसका अनुष्ठान काल 33 मास का होता है।

4. **अश्वमेध** – यह याग सार्वभौम क्षत्रिय राजा ही अनुष्ठित कर सकता है। सर्वविध कामना पूर्ति हेतु यह किया जाता है। ब्रह्महत्या प्रभृति समस्त महापातक भी इस याग के अनुष्ठान से नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निष्टोम की विकृति की प्रकृति से युक्त होता है। इसका सर्वप्रथम अनुष्ठान प्रजापति ने किया था यथा **–प्रजापतिकामयत• तेनाऽयजत (शांखायन श्रौतसूत्र 16.1.1)**।यह फाल्गुन शुक्ल अष्टमी/नवमी से प्रारम्भ किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में शुक्ल पक्ष की पंचमी को भी इसका प्रारम्भ कहा जाता है।

5. **पुरुषमेध** – यह उत्कृष्ट पद प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसमें 23 दीक्षा, 12 उपसद एवं 05 सुत्या होती हैं। यह चैत्र शुक्ल दशमी को प्रारम्भ किया जाता है। 11 यूप में ग्यारह अग्निषोमीय पशु का नियोजन किया जाता है। यजमान यदि ब्राह्मण हो तो सर्वमेधवत् यदि क्षत्रिय हो तो अश्वमेधवत् दक्षिणा का प्रावधान है। यह 40 दिवस में पूर्ण होता है।

6. **सर्वमेध** – समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु यह किया जाता है। इसमें द्वादशाह के नियमों का अतिदेश होता है। इसके अन्तर्गत 12 दीक्षा, 13 उपसद एवं 10 सुत्या होती है। 17 मुष्टिका अप्रसारित हस्त का एक यूप होता है। दक्षिणा पुरुषमेधवत् होती है। यह 34 दिवस में पूर्ण होता है।

7. **पितृमेध** – आहिताग्नि की मृत्यु के अनन्तर इसका सम्पादन पुत्र, पौत्र प्रभृति द्वारा किया जाता है। पितृमेध की स्मृतिस्वरूप चिति को देखने से जिसकी अस्थि पर चिति बनी होती है, उस मृत आहिताग्नि की कीर्ति चिरस्थायिनी होती है यथा **–पितृमेध संवत्सरास्मृतौ (कात्यायन श्रौतसूत्र 21.3.1)**। हस्त, स्वाति एवं पुष्य नक्षत्र, अमावस्या, माघ अथवा ग्रीष्म, शरद् ऋतु में यह अनुष्ठान प्रशस्त है। इसका अनुष्ठान त्रैवर्णिकों द्वारा किया जाता है। इसमें केवल एक अध्वर्यु ऋत्विक् होता है। यह अपसव्य विधि से किया जाता है।

8. **एकाह** – जिस क्रतु में एक/अनेक दीक्षा, तीन/बारह उपसद और एक सुत्या का क्रम है उसे एकाह कहते हैं, यथा– **एका दीक्षा तिस्रो वा. (देवयाज्ञिक पद्धति पृ. 705)।** इसके अन्तर्गत एक यजमान सोलह ऋत्विक् और उपर्त्विक् कार्य करते है। अग्निष्टोम/उक्थ्य/षोडशी एवं अतिरात्र में से किसी एक का परिग्रह होता है। उत्तरायण के किसी पूर्व पक्ष में शुभ दिवस एवं शुभ नक्षत्र पर इसका प्रारम्भ होता है।

9. **द्वादशाह** – यह सत्र एवं अहीन दोनों प्रकार का है। सत्रात्मक में कर्ता केवल ब्राह्मण होता है। इसमें 17 से 24 अग्निहोत्री जो अग्निष्टोम का अनुष्ठान कर चुके हों अधिकारी होते हैं। इसमें सभी यजमान हैं, अतः दक्षिणा नहीं होती है। फल सभी को प्राप्त होता है।

अहीनात्मक में एक, दो अथवा बहुत यजमान होते हैं। अग्निष्टोम के समान अध्वर्यु एवं ऋत्विक् कार्यकर्ता होते हैं। अतः कई सहस्र गाय दक्षिणास्वरूप होती है। फल मात्र यजमान को ही प्राप्त होता है। यह 36 दिवस तक चलता है।

10. **अहीन** – दो से ग्यारह दिवस तक की अवधि में सम्पन्न योग्य अहीन होता है। इसके अन्तर्गत एक/अनेक यजमान होते हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र के 23वें अध्याय में इसके तैंतीस प्रकार बताये गये हैं।

6.5 सारांश

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, दशपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत, सोमने यजेत स्वर्गकामः प्रभृति विधिवाक्य श्रौतयागों की फलश्रुति प्रकाशित करते हैं। अग्नि का आधान करने के लिए व्यक्ति का त्रैवर्णिक होना तथा विवाहित होना आवश्यक है। विवाह के उपरान्त दम्पती के एक पुत्र उत्पन्न हो जाये, तदनन्तर ही वह अग्नि का आधान करने का अधिकारी होता है, **जातपुत्र कृष्णकेश अग्नीन् आदधीत (कात्यायन श्रौतसूत्र भूमिका)**। अग्नि के भी पाँच स्वरूप हैं – आवसथ्याग्नि एवं सभ्याग्नि, इन दोनों का आधान, विवाह के पश्चात् वधू प्रवेश काल में किया जाता है **(आवसथ्याधानं दारकाले पारस्कारगृह्यसूत्र 1.2.1)**। तदनन्तर श्रौताग्नियों गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि का आधान पुत्र जन्म के अनन्तर कृष्ण केश रहते हुए करना चाहिए।

आवसथ्याग्नि का सम्बन्ध गृह्यकर्मों के अनुष्ठान से है। इसमें सप्त पाकयज्ञ (औपासन होम प्रभृति) तथा संस्कार आदि का सम्पादन होता है। श्रौताग्नि में हविर्याग (अग्निहोत्र प्रभृति) तथा सोमयाग (अग्निष्टोम/ज्योतिष्टोम प्रभृति) आदि कर्मों का अनुष्ठान होता है। दर्शपौर्णमास में यजमान दम्पती अतिरिक्त पाँच ऋत्विक् अपेक्षित होते हैं, जबकि सोमसंस्थाओं के सम्पादन गणक्रम से प्रत्येक में चार-चार इस प्रकार कुल सोलह ऋत्विक् होते है तथा प्रत्येक आहिताग्नि होना अनिवार्य है। सोमसंस्थाओं से आगे द्वादशाह, एकाह, अहीन, सत्र, क्रतु तथा अश्वमेध, राजसूय जैसे दीर्घकाल-साध्य प्रयोग भी होते हैं, जिनमें विशेष प्रयोगों को छोड़कर सोम संस्थाओं के कर्मों की ही पुनरावृत्ति होती है तथा इनका अनुष्ठान एक दिवस प्रभृति सहस्र दिवस अथवा इससे भी अधिक दीर्घ कालावधि तक होता है। इन वैदिक प्रयोगों में कई तथ्य छिपे रहते हैं, जिनकी जानकारी प्रयोग करने पर ही सम्भव है। वैदिक प्रयोग भारतीय ज्ञान-सम्पदा की निधि हैं।

6.6 शब्दावली

प्रकृति	–	जहाँ समस्त अंगों का उपदेश हो
विकृति	–	जहाँ विशिष्ट अंगों का उपदेश हो
अपर	–	दूसरा
स्थालीपाक	–	स्थाल्यां पचति इति स्थालिका में तैयार
चरु	–	यागार्थ गार्हपत्याग्नि पर पकाया गया ओदन
पुरोडाश	–	याग में देवतार्थ आहुति के लिए यव अथवा व्रीहि के आटे का हविर्द्रव्य के रूप में पुरोडाश बनाया जाता है
पिष्ट	–	पिसा हुआ चूर्ण/आटा

गार्हपत्याग्नि	–	गार्हपत्य संज्ञक वृत्ताकार खर जो कि पश्चिम दिशा में प्राप्त होने वाली अग्नि
दक्षिणाग्नि	–	दक्षिण दिशा में अर्धवृत्ताकर खर में प्राप्त होने वाली अग्नि
आहवनीयाग्नि	–	पूर्व दिशा में विद्यमान समचतुरस्र खर में प्रज्वलित अग्नि
सभ्याग्नि	–	ईशान कोणस्थ वृत्ताकार खर में प्राप्त स्मार्ताग्नि
आवसथ्याग्नि	–	आग्नेय कोणस्थ वृत्ताकार खर में प्राप्त स्मार्ताग्नि
अपसव्य	–	जहाँ यज्ञोपवीत का स्कन्ध परिवर्तन कर/पितृतीर्थ से कार्य हो
अतिदेश	–	दूसरे स्थान से प्राप्त नियम
श्रपण	–	पकाना/अग्नि में तपाना
संज्ञपन	–	श्वासावरोध कर अवदानोद्देश्यक प्राण हरण करना
अन्वाहार्य	–	चार ऋत्विजों की तृप्तिपर्यन्त भोज्य पक्वोदन

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. यज्ञतत्त्वप्रकाश, मोतीलाल बनारसीदास।
2. कात्यायन यज्ञपद्धति विमर्श, मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पं. बलेदव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. यज्ञ के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए प्रमुख विभागों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. पाक संस्था के अन्तर्गत परिगणित यागों का नामोल्लेख करते हुए किसी एक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. हविर्यज्ञ के अन्तर्गत चातुर्मास्य के पर्वों का उल्लेख कीजिए।
4. हविर्यज्ञ के वैशिष्ट्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. सोमसंस्था के अन्तर्गत अग्निष्टोमादि के प्रकृति–विकृति स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
6. सोमयाग के माहात्म्य का वर्णन कीजिए।
7. श्रौतयागों के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।